॥ श्रीहरिः ॥ 369

गोपी-प्रेम

हनुमानप्रसाद पोद्दार

369

॥ श्रीहरिः ॥

गोपी-प्रेम

हनुमानप्रसाद पोद्दार

प्रकाशक—गोबिन्दभवन-कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० १९९१ से २०५४ तक	२,१५,२५०
सं० २०५७ पचीसवाँ संस्करण	४,०००
योग	२,१९,२५०

मूल्य—तीन रुपये

मुद्रक—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

फोन : (०५५१) ३३४७२१; फैक्स ३३६९९७

e-mail:gitapres@ndf.vsnl.net.in
visit us at-www.gitapress.org

॥ श्रीहरिः ॥

गोपी-प्रेम

कहा 'रसखान' सुख-संपति सुमार महँ
कहा महाजोगी ह्वै लगाए अंग छारको।
कहा साधे पंचानल, कहा सोए बीच जल,
कहा जीत लीन्हें राज सिंधु वारापारको॥
जप बार-बार, तप-संजम, अपार, ब्रत,
तीरथ हजार अरे! बूझत लबारको?
सोइ है गँवार जिहि कीन्हों नाहिं प्यार, नाहिं
सेयो दरबार यार नंदके कुमारको॥
कंचनके मंदिरन दीठि ठहरात नायँ
सदा दीपमाल लाल रतन उजारेसों।
और प्रभुताई तव कहाँ लौं बखानौं, प्रति-
हारिनकी भीर भूप टरत न द्वारेसों॥
गंगाजूमें न्हाय मुकताहल लुटाय, बेद—
बीस बार गाय ध्यान कीजै सरकारेसों।
ऐसे ही भये तौ कहा कीन्हों, 'रसखान' जुपै,
चित्त दै न किन्ही प्रीति पीत पटवारेसों॥

'गोपी-प्रेम' पर कुछ भी लिखना वस्तुतः मुझ-सरीखे मनुष्यके लिये अनधिकार चर्चा है। गोपी-प्रेमका तत्त्व वही प्रेमी भक्त कुछ जान सकता है, जिसको भगवान्‌की ह्लादिनी शक्ति श्रीमती राधिकाजी और आनन्द तथा प्रेमके दिव्य समुद्र भगवान् सच्चिदानन्दघन परमात्मा श्रीकृष्ण स्वयं कृपापूर्वक जना देते हैं। जाननेवाला भी उसे कह या

लिख नहीं सकता, क्योंकि 'गोपी-प्रेमी' का प्रकाश करनेवाली भगवान्‌की वृन्दावनलीला सर्वत्र अनिर्वचनीय है। वह कल्पनातीत, अलौकिक और अप्राकृत है। समस्त व्रजवासी भगवान्‌के मायामुक्त परिकर हैं और भगवान्‌की निज आनन्दशक्ति, योगमाया श्रीराधिकाजीकी अध्यक्षतामें भगवान् श्रीकृष्णकी मधुरलीलामें योग देनेके लिये व्रजमें प्रकट हुए हैं। व्रजमें प्रकट इन महात्माओंकी चरणरजकी चाह करते हुए सृष्टिकर्ता ब्रह्मा स्वयं कहते हैं—

तदस्तु मे नाथ स भूरिभागो
भवेऽत्र वान्यत्र तु वा तिरश्चाम्।
येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां
भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम्॥
अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्॥
तद् भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां
यद् गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोऽभिषेकम्।
यज्जीवितं तु निखिलं भगवान् मुकुन्द-
स्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव॥

(श्रीमद्भा० १०। १४। ३०, ३२, ३४)

'हे प्रभो! मुझे ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो कि मैं इस जन्ममें अथवा किसी तिर्यक्-योनिमें ही जन्म लेकर आपके दासोंमेंसे एक होऊँ, जिससे आपके चरणकमलोंकी सेवा कर सकूँ। अहो! नन्दादि व्रजवासी धन्य हैं। इनके धन्य भाग्य हैं जिनके सुहृद् परमानन्दरूप सनातन पूर्णब्रह्म स्वयं आप हैं। इस धरातलपर व्रजमें और उसमें भी गोकुलमें किसी कीड़े-मकोड़ेकी योनि पाना ही परम सौभाग्य है, जिससे कभी किसी व्रजवासीकी चरणरजसे मस्तकको अभिषिक्त होनेका सौभाग्य मिले।'

जिन व्रजवासियोंकी चरण-धूलिको ब्रह्मा चाहते हैं, उनका कितना बड़ा महत्त्व है! ये व्रजवासीगण मुक्तिके अधिकारको ठुकराकर उससे बहुत आगे बढ़ गये हैं। इस बातको स्वयं ब्रह्माजीने कहा है कि 'भगवन्! मुक्ति तो कुचोंमें विष लगाकर मारनेको आनेवाली पूतनाको ही आपने दे दी। इन प्रेमियोंको क्या वही देंगे—इनका तो आपको ऋणी बनकर ही रहना होगा।' और भगवान्‌ने स्वयं अपने श्रीमुखसे यह स्वीकार भी किया है। आप गोपियोंसे कहते हैं—

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां
स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।
या माभजन् दुर्जरगेहशृङ्खलाः
संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना॥

(श्रीमद्भा० १०। ३२। २२)

'हे प्रियाओ! तुमने घरकी बड़ी कठिन बेड़ियोंको तोड़कर मेरी सेवा की है। तुम्हारे इस साधुकार्यका मैं देवताओंके समान आयुमें भी बदला नहीं चुका सकता। तुम ही अपनी उदारतासे मुझे उऋण करना।'

महात्मा नन्ददासजीकी रचनामें भगवान् कहते हैं—

तब बोले ब्रजराज-कुँवर हौं रिनी तुम्हारो।
अपने मनते दूरि करौ किन दोष हमारो॥
कोटि कलप लगि तुम प्रति प्रति उपकार करौं जौ।
हे मनहरनी तरुनी, उरिनी नाहिं तबौं तौ॥
सकल बिस्व अपबस करि मो माया सोहति है।
प्रेममयी तुम्हरी माया सो मोहि मोहति है॥
तुम जु करी सो कोउ न करै सुनि नवलकिसोरी।
लोक-बेदकी सुदृढ़ सृङ्खला तृन-सम तोरी॥

सारे संसारके देव, मनुष्य, गन्धर्व, असुर आदि जीवोंको कर्मोंकी बेड़ीसे निरन्तर बाँधे रखनेवाले सच्चिदानन्दघन, जगन्नियन्ता, प्रभु गोपी यशोदाके द्वारा ऊखलसे बँध जाते हैं। सारे जगत्को मायाके खेलमें सदा रमानेवाले मायापति हरि गोप-बालकोंसे खेलमें हारकर, स्वयं घोड़े बनकर उन्हें अपनी पीठपर चढ़ाते हैं। उन व्रजवासी नर-नारियोंको धन्य है ! एक दिनकी बात है—यशोदाजी घरके आवश्यक कामोंमें लग रही थीं, बालकृष्ण मचल गये और बोले, मैं गोद चढ़ूँगा। माताने कुछ ध्यान न दिया। इसपर खीझकर आप लगे रोने और आँगनमें लोटने। इतनेहीमें देवर्षि नारद भगवान्की बाल-लीलाओंको देखनेकी लालसासे वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने देखा, सचराचर विश्वके स्वामी परम आनन्दमय भगवान् माताकी गोद चढ़नेके लिये जमीनपर पड़े रो रहे हैं। इस दृश्यको देखकर देवर्षि गद्गद हो गये और यशोदाको पुकारकर कहने लगे—

किं ब्रूमस्त्वां यशोदे कति कति सुकृतक्षेत्रवृन्दानि पूर्वं
गत्वा कीदृग् विधानैः कति कति सुकृतान्यर्जितानि त्वयैव ।
नो शक्रो न स्वयम्भूर्न च मदनरिपुर्यस्य लेभे प्रसादं
तत्पूर्णं ब्रह्म भूमौ विलुठति विलपन् क्रोडमारोढुकामम् ॥

'यशोदे ! तेरा सौभाग्य महान् है। क्या कहें, न जाने तूने पिछले जन्मोंमें तीर्थोंमें जा-जाकर कितने महान् पुण्य किये हैं। अरी ! जिस विश्वपति, विश्वस्रष्टा, विश्वरूप, विश्वाधार, भगवान्की कृपाको इन्द्र, ब्रह्मा और शिव भी नहीं प्राप्त कर सकते, वही पूर्णब्रह्म आज तेरी गोद चढ़नेके लिये जमीनपर पड़ा लोट रहा है !'

जो विश्वनायक भगवान् मायाके दृढ़ सूत्रमें बाँध-बाँधकर अखिल विश्वको निरन्तर नाच नचाते हैं, वही विज्ञानानन्दघन भगवान् गोपियोंकी प्रेम-मायासे मोहित होकर सदा उनके आँगनमें नाचते हैं। उनके भाग्यकी सराहना और उनके प्रेमका महत्त्व कौन बतला सकता

है; रसखानि कहते हैं—

सेस महेस गनेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरंतर ध्यावैं।
जाहि अनादि अनंत अखंड अछेद अभेद सुबेद बतावैं॥
नारद-से सुक-ब्यास रटैं, पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीरकी छोहरियाँ छछियाभरि छाछपै नाच नचावैं॥

गोपियोंके भाग्यकी सराहना करते हुए परम विरागी, सदा ब्रह्मस्वरूप मुनि शुकदेवजी कहते हैं—

नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत् प्राप विमुक्तिदात्॥

(श्रीमद्भा० १०।९।२०)

'ब्रह्मा, शिव और सदा हृदयमें रहनेवाली लक्ष्मीजीने भी मुक्तिदाता भगवान्‌का वह दुर्लभ प्रसाद नहीं पाया जो प्रेमिकाश्रेष्ठ गोपियोंको मिला।'

इसी प्रकार ज्ञानिश्रेष्ठ उद्धवजी कहते हैं—

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः
स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः।
रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठ-
लब्धाशिषां य उदगाद् व्रजवल्लवीनाम्॥

(श्रीमद्भा० १०।४७।६०)

'रासोत्सवके समय भगवान्‌के भुजदण्डोंको गलेमें धारणकर पूर्णकामा व्रजकी गोपियोंको श्रीहरिका जो दुर्लभ प्रसाद प्राप्त हुआ था, वह निरन्तर भगवान्‌के वक्षःस्थलमें निवास करनेवाली लक्ष्मीजीको और कमलकी-सी कान्ति और सुगन्धसे युक्त सुरसुन्दरियोंको भी नहीं मिला, फिर दूसरेकी तो बात ही क्या है?'

सूरदासजी कहते हैं—

बनी सहज यह लूट हरिकेलि गोपीनके
सुपनें यह कृपा कमला न पावे।
निगम निरधार त्रिपुरारहू बिचार रह्यो,
पचि रह्यो सेस नहिं पार पावे॥
किंनरी बहुर अरु बहुर गंधरबनी,
पन्नगनी चितवन नहिं माँझ पावें॥
देत करताल वे लाल गोपालसों,
पकर वे ब्रजलाल कपि ज्यों नचावें॥

× × ×

बैन कहि लोने पुनि चाहि रहत बदन हँसि,
स्वभुज बीच ले ले कलोलें।
धामके काम ब्रजबाम सब भूल रहीं,
क़ान्ह बलरामके संग डोलें॥
सूर गिरधरन मधु चरितमधु पानके,
और अमरित कछु आन आगे।
और सुख रंककी कौन इच्छा करे,
मुक्तिहू लौन-सी खारी लागे॥

गोपियोंकी चरण-रज पानेके लिये व्रजमें लता-गुल्मौषधि बननेके इच्छुक और गोपियोंका शिष्यत्व ग्रहण करके गोपीभावको प्राप्त हुए भक्त उद्धवसे स्वयं भगवान्‌ने कहा है—

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शङ्करः।
न च सङ्कर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्॥

(श्रीमद्भा० ११।१४।१५)

'हे उद्धव! मुझे ब्रह्मा, सङ्कर्षण, लक्ष्मी और अपना आत्मा—ये भी उतने प्रियतम नहीं हैं, जितने तुझ-जैसे भक्त प्रियतम हैं।'

इससे गोपियोंके महत्त्वकी किञ्चित् कल्पना हुई होगी।

भगवान्‌की ऐसी प्रियतमा गोपियोंके प्रेमका वर्णन मुझ-जैसा मनुष्य कैसे कर सकता है? परम वैराग्यकी प्राप्ति होनेपर कहीं प्रेमका अधिकार मिलता है और उस दिव्य प्रेम-राज्यमें प्रवेश कर चुकनेवाले महात्माओंके प्रसादसे ही दुर्गम प्रेमपथपर अग्रसर होकर भक्त उस प्रेमामृतका कुछ आस्वाद प्राप्त कर सकता है। यह साधन-सापेक्ष है। केवल अध्ययन या ग्रन्थपाठसे वहाँतक पहुँच नहीं हो सकती, तथापि भगवत्कृपासे इधर-उधरसे जो कुछ बातें मालूम हुई हैं, उन्हींका कुछ थोड़ा-सा भाव संक्षेपमें लिखनेकी चेष्टा यहाँ की जाती है। भाग्यवान् पूज्यपाद प्रेमीजन कृपापूर्वक अपराध और धृष्टता क्षमा करेंगे।

प्रेमका स्वरूप

गोपी-प्रेमका रहस्य जाननेसे पहले प्रेम-तत्त्वपर कुछ विचार करना आवश्यक है। प्रेम वस्तुतः वाणीकी वस्तु नहीं है, जिसका वर्णन वाणीसे हो सकता है, वह तो प्रेमका अत्यन्त स्थूल बाहरी स्वरूप है। प्रेम हृदयमें रहता है और प्रेमीको प्रेममय बना डालता है। भगवान् श्रीरामने श्रीजानकीजीके पास यह प्रेम-संदेश भेजा था—

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥

'तुम्हारे और मेरे प्रेमका तत्त्व केवल एक मेरा मन जानता है और वह मन सदा तुम्हारे पास रहता है। प्रेममें स्वार्थके लिये जरा-सी भी जगह नहीं है। जहाँ कुछ भी पानेकी वासना है वहाँ प्रेमके पवित्र आसनको काम कलङ्कित कर रहा है। प्रेममें देना-ही-देना है, लेने या पानेकी कल्पना भी नहीं है। प्रेम सदा बढ़ता ही रहता है। प्रेमी कभी यह मान ही नहीं सकता कि मुझमें पूरा प्रेम है। वह सदा अपनेमें त्रुटि ही देखा करता है और अनन्यभावसे प्रेमास्पदके प्रति सदा हृदयको आकृष्ट रखता है। गुण देखकर अथवा किसी आशासे जो प्रेम होता है वह तो गुणोंका ह्रास देखते ही अथवा आशाभङ्गकी आशङ्का होते

ही घट जाता है या नष्ट हो जाता है। वह वास्तवमें प्रेम नहीं है। वहाँ काम ही प्रेमके नामपर राज्य कर रहा है।

छिनहि चढ़ै, छिन ऊतरै, सो तो प्रेम न होय।
अघट प्रेम पिंजर बसै, प्रेम कहावै सोय॥

अन्यत्र कहा गया है—

सर्वथा ध्वंसरहितं सत्यपि ध्वंसकारणे।
यद्भावबन्धनं यूनोः स प्रेमा परिकीर्तितः॥

'ध्वंसका कारण वर्तमान होनेपर भी जो सर्वथा ध्वंसरहित है, इस प्रकारके परस्परके भावको प्रेम कहते हैं।' अर्थात् प्रेमास्पदका धन नष्ट हो गया, रूप जाता रहा, उसके सद्गुण दुर्गुणोंमें परिणत हो गये, उसने आदर-सत्कार या प्रेम करना छोड़ दिया, वह पद-पदपर तिरस्कार करता है, हमारा अपमान करके हमारे ही सामने दूसरेको आदर देता है, उसमें हजारों दोषोंका उदय हो गया है, ऐसी अवस्थामें प्रेम नष्ट होना ही चाहिये। संसारमें ऐसी अवस्था हो ही जाती है, परंतु इस स्थितिमें भी जो प्रेम कभी घटता नहीं, बल्कि दिनोंदिन बढ़ता ही रहता है, उसीका नाम यथार्थ प्रेम है।

रसखानि कहते हैं—

बिनु जोबन गुनरूप धन, बिनु स्वारथ हित जानि।
सुद्ध कामनाते रहित, प्रेम सकल 'रसखानि'॥
अति सूच्छम, कोमल अतिहि, अति पतरो, अति दूर।
प्रेम कठिन सबते सदा, नित इकरस भरपूर॥
रसमय, स्वाभाविक, बिना स्वारथ, अचल महान।
सदा एक रस बढ़त नित, सुद्ध प्रेम 'रसखान'॥

प्रेमकी बाढ़ कभी रुकती ही नहीं—इस चन्द्रकलाके लिये कभी पूर्णिमा नहीं होती!

प्रेम सदा बढ़िबौ करै, ज्यों ससिकला सुबेष।
पै पूनो यामें नहीं, तातें कबहुँ न सेष॥

और ऐसा प्रेम वस्तुतः केवल भगवान्‌में उनके प्रेमी भक्तका ही हो सकता है। देवर्षि नारदजी ऐसे प्रेमका लक्षण बतलाते हुए कहते हैं—

अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्। मूकास्वादनवत्। प्रकाशते क्वापि पात्रे। गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षणवर्धमानमविच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम्। तत्प्राप्य तदेवावलोकयति, तदेव शृणोति, तदेव चिन्तयति॥

(नारदभक्तिसूत्र ५१—५५)

अर्थात् 'प्रेमके स्वरूपका उसी प्रकार वर्णन नहीं किया जा सकता, जैसे गूँगा स्वादका वर्णन नहीं कर सकता। ऐसा प्रेम किसी विरले भाग्यवान् अधिकारी-(परम विषय-विरागी भगवदनुरागी भक्तमें ही प्रकट होता है। यह प्रेम गुणोंसे रहित है, इसमें कामना-) की गन्ध नहीं है, यह हर क्षण बढ़ता ही रहता है, इसका प्रवाह सदा अटूट रहता है, यह अति सूक्ष्म है, केवल अनुभवसे जाना जा सकता है। इस प्रेमको पाकर भक्त केवल प्रेमको ही देखता है, प्रेमको ही सुनता है और प्रेमका ही चिन्तन करता है।' वहाँ प्रेम और प्रेमास्पदमें कोई अन्तर नहीं रह जाता। क्योंकि—

प्रेम हरीको रूप है, त्यों हरि प्रेमसरूप।
एक होइ द्वै में लसै, ज्यों सूरज अरु धूप॥

इसी प्रेमभावको प्राप्त गोपियोंकी दशाका वर्णन करते हुए भक्त कविगण क्या कहते हैं, कुछ नमूने देखिये—

(१)

जित देखौं तित स्याममई है।
स्याम कुंज बन जमुना स्यामा, स्याम गगन घनघटा छई है।
सब रंगनमें स्याम भरो है, लोग कहत यह बात नई है॥

हौं बौरी, की लोगनहीकी स्याम पुतरिया बदल गई है ॥
चन्द्रसार रबिसार स्याम है, मृगमद स्याम काम बिजई है ॥
नीलकंठको कंठ स्याम है, मनो स्यामता बेल बई है ॥
श्रुतिको अच्छर स्याम देखियत, दीपसिखापर स्यामतई है ॥
नर-देवनकी कौन कथा है, अलख-ब्रह्मछबि स्याममई है ॥

(२)

कान न दूसरो नाम सुनै, नहि एकहि रंग रँगों यह डोरो ।
धोखेहु दूसरो नाम कढ़ै, रसना मुख बाँधि हलाहल बोरो ॥
ठाकुर चित्तकी वृत्ति यहै हम कैसेहु टेक तजैं नहिं भोरो ।
बावरी वे अँखिया जरि जायँ जो साँवरो छाँड़ि निहारति गोरो ॥

(३)

पहले ही जाय मिले गुनमें श्रवन, फेरि
रूपसुधा मथि कीनो नैनहु पयान है ।
हँसनि, नटनि, चितवनि, मुसुकानि,
सुघराई रसिकाई मिली मति-पय-पान है ॥
मोहि-मोहि मोहनमयी री मन मेरो भयो,
'हरीचंद' भेद न परत पहचान है ।
कान्ह भये प्रानमय, प्रान भये कान्हमय,
हियमें न जानि परै कान्ह है कि प्रान है ॥

(४)

बाटनमें घाटनमें बीथिनमें बागनमें,
बृच्छनमें बेलिनमें बाटिकामें बनमें ।
दरनमें दिवारनमें देहरी दरीचनमें,
हीरनमें हारनमें भूपनमैं तनमें ॥
काननमें कुंजनमें गोपिनमें गायनमें,
गोकुलमें गोधनमें दामिनिमें घनमें ।

जहाँ-जहाँ देखौं तहँ स्याम ही दिखाई देत,
सालिगराम छाइ रह्यो नैननमें मनमें ॥

(५)

कहि न जाय मुखसौं कछू स्याम-प्रेमकी बात।
नभ जल थल चर अचर सब स्यामहि स्याम लखात ॥
ब्रह्म नहीं, माया नहीं, नहीं जीव नहिं काल।
अपनीहू सुध ना रही, रह्यो एक नँदलाल ॥
को, कासों केहि बिधि, कहा कहै हृदैकी बात।
हरि हेरत हिय हरि गयौ, हरि सरबत्र लखात ॥

(६)

'नारायण' जाके हृदय सुंदर स्याम समाय।
फूल पात फल डारमें ताको वही लखाय ॥
दर दिवार दरपन भये, जित देखौं तित तोहि।
काकर पत्थर ठीकरी, भये आरसी मोहि ॥

इस तरह कृष्णमय जगत् देखनेवाली गोपियोंकी एक गाथा इस प्रकार है—दिन-रात श्रीकृष्ण-चर्चामें लगी हुई कुछ गोपियोंसे एक दिन एक गोपीने पूछा—'बहिन ! क्या कहूँ, नन्दबाबा गोरे, यशोदाजी गोरी, दाऊजी गोरे, घरभरमें सभी गोरे, पर हमारे श्यामसुन्दर ही साँवरे कैसे हो गये ?' इसपर एक कृष्णदर्शनमयी गोपीने कहा—'बहिन ! क्या तू इतना भी नहीं जानती—अरी !'

कजरारी अँखियानमें बस्यो रहत दिन रात।
पीतम प्यारो हे सखी, तातें साँवर गात ॥

कितने रहस्यकी बात है, गोपीकी कजरारी आँखोंमें केवल श्रीकृष्ण ही बसते हैं, जगत्‌में उसकी आँखें और किसीको देखती ही नहीं। कुछ लोग कहा करते हैं कि गोपियाँ भगवान्‌को सर्वव्यापक नहीं मानती थीं। उनका यह कहना ठीक ही है, क्योंकि गोपियाँ एकमात्र

भगवान्‌को ही देखती थीं। जब दूसरी कोई वस्तु ही नहीं रही तब कौन किसमें व्यापक हो !

इस प्रकार श्रीकृष्णके दिव्य प्रेममें डूबी हुई गोपियोंके चरण-पङ्कजपरागको बार-बार नमस्कार करके अब आगे बढ़ना है।

गोपी-प्रेम

गोपी-प्रेममें रागका अभाव नहीं है, परन्तु वह राग सब जगहसे सिमटकर, भुक्ति और मुक्तिके दुर्गम प्रलोभन-पर्वतोंको लाँघकर केवल श्रीकृष्णमें अर्पण हो गया है। गोपियोंके मन, प्राण सब कुछ श्रीकृष्णके हैं, इहलोक और परलोकमें गोपियाँ श्रीकृष्णके सिवा अन्य किसीको भी नहीं जानतीं। उनका जीवन केवल श्रीकृष्ण-सुखके लिये है, उनका जागना, सोना, खाना, पीना, चलना-फिरना, शृङ्गार-सज्जा करना, कबरी बाँधना, गीत गाना, बातचीत करना सब श्रीकृष्णको सुख पहुँचानेके लिये हैं, श्रीकृष्णको सुखी देखकर ही सम्पूर्ण कामनाओंसे सर्वथा शून्य उन गोपियोंको अपार सुख होता है। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

निजाङ्गमपि या गोप्यो ममेति समुपासते।
ताभ्यः परं न मे पार्थ निगूढप्रेमभाजनम्॥

'हे अर्जुन ! गोपियाँ अपने शरीरकी रक्षा मेरी सेवाके लिये ही करती हैं। गोपियोंको छोड़कर मेरा निगूढ़ प्रेमपात्र और कोई नहीं है।'

यहाँ यह प्रश्न होता है कि सुख-समुद्र विज्ञानानन्दघन भगवान्‌को सुख पहुँचाना कैसा, क्या गोपियोंके द्वारा ही भगवान्‌को सुख मिलता है ? भगवान् क्या स्वयं सुखसन्दोह नहीं हैं ? हैं क्यों नहीं, शक्तिमान् भगवान्‌की ही ह्लादिनी शक्ति तो श्रीराधिकाजी हैं, वे इस शक्तिको अपने वंशी-ध्वनिद्वारा सदा अपनी ओर खींचते रहते हैं। भगवान्‌की यह शक्ति स्वाभाविक ही अपनी सारी अनुगामी अङ्ग-शक्तियोंसहित सदा-सर्वदा भगवान्‌की ओर खिंचती रहती है और भगवान् उस

आह्लादको पाकर पुनः उसे उन्हीं शक्तियोंको—प्रेमी भक्तोंको बाँट देते हैं। भक्त भगवान्की बाँसुरीकी ध्वनि—भगवान्का आवाहन सुनकर, घर-द्वारकी सुधि भुलाकर, प्रमत्त होकर, अपना सर्वस्व न्योछावर कर, भगवान्को सुखी करनेके लिये दौड़ता है। भगवान् उसकी दी हुई सुखकी भेंटको स्वीकार करते हैं और फिर उसीको लौटा देते हैं। दर्पणमें अपनी शोभा भरकर दर्पणको शोभायुक्त बनानेवाला पुरुष उस शोभाको स्वयं ही वापस पा जाता है और वह सुख लौटकर उसीको मिल जाता है। इसी प्रकार परम सुखसागर भगवान् गोपियोंके सुखकी भेंटको स्वीकार कर, उनकी इस कामनाको कि 'श्रीकृष्ण हमें देखकर, हमारी सेवा स्वीकार कर, हमारे साथ खेलकर सुखी हों' पूरी कर देते हैं। भगवान् सुखी होते हैं और वह सुख अपरिमितरूपमें बढ़ा करके उन्हींको दे देते हैं। गोपियोंके प्रेमकी यही विशेषता है कि गोपियोंको निज सुखकी कामना रत्तीभर भी नहीं है! उनके मनमें अपने सुखके लिये कल्पना ही नहीं होती। वे तो अपने द्वारा श्रीकृष्णको सुखी हुए देखकर ही दिन-रात सुख-समुद्रमें डूबी रहती हैं। गोपियोंका प्रेम काम-कालिमा-शून्य है; वह निर्मल भास्कर है, सर्वथा दिव्य है, अलौकिक है। श्रीचैतन्य-चरितामृतमें 'काम' और 'प्रेम' का भेद बतलाते हुए कहा है—

कामेर तात्पर्य निज संभोग केवल,
कृष्ण-सुख तात्पर्य प्रेम तो प्रबल।
लोक-धर्म, वेद-धर्म, देह-धर्म, कर्म
लज्जा-धैर्य, देह-सुख, आत्म-सुख मर्म॥
सर्व त्याग करये करे कृष्णेर भजन
कृष्ण-सुख-हेतु करे प्रेमेर सेवन।
अतएव काम-प्रेमे बहुत अन्तर,
काम अन्धतम, प्रेम निर्मल भास्कर॥

काम और प्रेममें बड़ा ही अन्तर है, हम विषयविमोहित जीव कामको ही प्रेम मानकर पाप-पङ्कमें फँस जाते हैं। काम जहर मिला हुआ मधु है। प्रेम दिव्य स्वर्गीय सुधा है। काम थोड़ी ही देरमें दुःखके रूपमें बदल जाता है, प्रेमकी प्रत्येक कसकमें ही सुखसुधाका स्वाद मिलता है। काममें इन्द्रिय-तृप्ति, इन्द्रिय-चरितार्थता है, प्रेममें तन्मयता, प्रियतम-सुखकी नित्य प्रबल आकाङ्क्षा है। काममें इन्द्रियतृप्ति सुखरूप दीखनेपर भी परिणाममें दुःखरूप है, प्रेम सदा अतृप्त होनेपर भी नित्य परम सुखरूप है। काम खण्ड है, प्रेम अखण्ड है। काम क्षयशील है, प्रेम नित्य वर्धनशील है। काममें विषयतृष्णा है, प्रेममें विषयविस्मरण है। कामका लक्ष्य विषय है, आत्मतृप्ति है, प्रेमका विषय पूर्ण त्याग है और चरम आत्मविस्मृति है।

यथार्थ प्रेमसे ही कामका नाश हो जाता है। यद्यपि प्रेमी अपने प्रेमास्पदको सुख पहुँचानेकी इच्छाको कामना ही मानता है और समस्त इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि एकमात्र प्रेममुखी होनेसे उसे कामना ही कहते हैं, परंतु वह शुद्ध प्रेम यथार्थमें काम नहीं है। गौतमीयतन्त्रमें कहा है—

प्रेमैव गोपरामाणां काम इत्यगमत् प्रथाम्।
इत्युद्धवादयोऽप्येतं वाञ्छन्ति भगवत्प्रियाः ॥

'गोपियोंके प्रेमका नाम काम होनेपर भी वह असलमें काम नहीं, किंतु शुद्ध प्रेम है। महान् भगवद्भक्त उद्धवसरीखे महात्मा इसी 'काम' नामक प्रेमकी अभिलाषा करते हैं।' क्योंकि गोपियोंमें निजेन्द्रियसुखकी इच्छा है ही नहीं। वे तो भगवान् श्रीकृष्णको साक्षात् भगवान् समझकर ही अपने सकल अङ्गोंको सम्पूर्णरूपसे अर्पण कर उन्हें सुखी करना चाहती हैं! श्रीचैतन्यचरितामृतमें विषयासक्तिशून्य श्रीकृष्ण-गतप्राणा गोपियोंके सम्बन्धमें कहा है—

निजेन्द्रिय-सुख-हेतु कामेर तात्पर्य
कृष्णसुख तात्पर्य गोपीभाव वर्य।

निजेन्द्रिय-सुख-वाञ्छा नहे गोपीकार,
कृष्ण-सुख-हेतु करे संगम-विहार ॥
आत्म-सुख-दुःख गोपी ना करे विचार,
कृष्ण-सुख-हेतु करे सब व्यवहार ।
कृष्ण बिना आर सब करि परित्याग,
कृष्ण-सुख-हेतु करे शुद्ध अनुराग ॥

अपने तन, मन, धन, रूप, यौवन, लोक-परलोक—सबको श्रीकृष्णकी सुख-सामग्री समझकर श्रीकृष्ण-सुखके लिये शुद्ध अनुराग करना ही पवित्र गोपीभाव है। इस गोपीभावमें मधुर रसकी प्रधानता है। रस पाँच हैं—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य। लौकिक और ईश्वरीय—दिव्य भेदसे ये पाँचों रस दो प्रकारके हैं अर्थात् लौकिक प्रेम भी उपर्युक्त पाँच प्रकारका है और दिव्य प्रेम भी पाँच प्रकारका है। परंतु इन पाँचोंमें मधुर रस—कान्ताप्रेम सबसे ऊँचा है, क्योंकि इसमें शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य—ये चारों ही रस विद्यमान हैं। यह अधिक गुणसम्पन्न होनेसे अधिक स्वादिष्ट है, इसलिये इसका नाम 'मधुर' है। इसी प्रकार दिव्य प्रेममें भी कान्ताप्रेम—मधुर रस ही सर्वप्रधान है। शान्त और दास्यरसमें 'भगवान् ऐश्वर्यशाली हैं, मैं दीन हूँ, भगवान् स्वामी हैं, मैं सेवक हूँ'—ऐसा भाव रहता है। इसमें कुछ अलगाव-सा है, भय है और संकोच है; परंतु सख्य, वात्सल्य और माधुर्यमें क्रमशः भगवान् अधिकाधिक निजजन हैं, अपने प्यारे हैं, प्रियतम हैं, इनमें भगवान् ऐश्वर्यको भुलाकर, विभूतिको छिपाकर सखा, पुत्र या कान्तरूपसे भक्तके सामने सदा प्रकट रहते हैं, इन रसोंमें प्रार्थना-कामना है ही नहीं। अपने निज-जनसे प्रार्थना कैसी ? उसका सब कुछ अपना ही तो है। इनमें भी कान्ताभाव सर्वप्रधान है। कान्ताभावमें पिछले दोनों रसोंका—सख्य और वात्सल्यका पूर्ण समावेश है। यहाँ भगवान्की

सेवा खूब होती है, इतनी होती है कि सेवा करनेवाला भक्त कभी थकता ही नहीं; क्योंकि यह मालिककी सेवा नहीं है, प्रियतमकी सेवा है। प्रियतमके सुखी होनेमें ही अपार सुख है, जितना सुख पहुँचे, उतना ही थोड़ा; क्योंकि प्रियतमको जितना अधिक सुख पहुँचता है, उतने ही अपार सुखका अनुभव उसे सुख पहुँचानेवाली प्रेममयी प्रियतमाको होता है।

यह कान्ताभाव दो प्रकारका है—स्वकीया और परकीया। लौकिक कान्ताभावमें परकीयाभाव त्याज्य है, घृणित है; क्योंकि उसमें अङ्ग-सङ्गरूप कामवासना रहती है और प्रेमास्पद 'जार मनुष्य' होता है। परंतु दिव्य कान्ताभावमें—परमेश्वरके प्रति होनेवाले कान्ताभावमें परकीयाभाव ग्राह्य है, वह स्वकीयासे श्रेष्ठ है, क्योंकि इसमें कहीं अङ्ग-सङ्ग या इन्द्रियतृप्तिकी आकाङ्क्षा नहीं है। प्रेमास्पद जार पुरुष नहीं है, स्वयं 'विश्वात्मा भगवान् हैं'—पति-पुत्रोंके और अपने सबके आत्मा परमात्मा हैं। इसीलिये गोपी-प्रेममें परकीयाभाव माना जाता है। यद्यपि स्वकीया पतिव्रता स्त्री अपना नाम, गोत्र, जीवन, धन, धर्म सभी पतिके अर्पण कर प्रत्येक चेष्टा पतिके लिये ही करती है, तथापि परकीयाभावमें तीन बातें विशेष होती हैं। प्रियतमका निरन्तर चिन्तन, उससे मिलनेकी अतृप्त उत्कण्ठा और प्रियतममें दोषदृष्टिका सर्वथा अभाव। स्वकीयामें सदा एक ही घरमें एक साथ निवास होनेके कारण ये तीनों ही बातें नहीं होतीं। गोपियाँ भगवान्‌को नित्य देखती थीं, परंतु परकीयाभावकी प्रधानतासे क्षणभरका वियोग भी उनके लिये असह्य हो जाता था, आँखोंपर पलक न बनानेके लिये वे विधाताको कोसती थीं, क्योंकि पलक न होते तो आँखें सदा खुली ही रहतीं। गोपियाँ कहती हैं—

अटति यद् भवानह्नि काननं
त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्।

कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते
जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम् ॥

(श्रीमद्भा० १०। ३१। १५)

'जब आप दिनके समय वनमें विचरते हैं तब आपको न देख सकनेके कारण हमारे लिये एक-एक पल युगके समान बीतता है। फिर संध्याके समय जब वनसे लौटते समय हम घुँघराली अलकावलियोंसे युक्त आपके श्रीमुखको देखती हैं, तब हमें आँखोंमें पलक बनानेवाले ब्रह्मा मूर्ख प्रतीत होने लगते हैं। अर्थात् एक पलक भी आपको देखे बिना हमें कल नहीं पड़ती।'

भगवान्‌का नित्य चिन्तन करना, पलभरके अदर्शनमें भी महान् विरह-वेदनाका अनुभव करना और सर्वतोभावसे दोष-दर्शनरहित होकर आत्मसमर्पण कर चुकना गोपियोंका स्वभाव था। इसीसे उस प्रियतमसेवाके सामने किसी बातको कुछ भी नहीं समझती थीं। लोक-वेद सबकी मर्यादाको छोड़कर वे कृष्णानुरागिणी बन गयी थीं। भोग और मोक्ष—दोनों ही उनके लिये सर्वथा तुच्छ और त्याज्य थे। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः।
ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान् बिभर्म्यहम् ॥

(श्रीमद्भा० १०। ४६। ४)

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत् ॥

(श्रीमद्भा० ११। १४। १४)

'हे उद्धव! गोपियोंने अपने मन और प्राण मुझमें अर्पण कर दिये हैं। मेरे लिये अपने सारे शारीरिक सम्बन्धोंको और लोकसुखके

साधनोंको त्यागकर वे मुझमें ही अनुरक्त हो रही हैं। मैं ही उनके सुख और जीवनका आधार हूँ। इस प्रकार अपने आत्माको मुझमें अर्पित करनेवाला भक्त मुझको छोड़कर ब्रह्माके पद, इन्द्रके पद, चक्रवर्तीके पद, पाताल आदिके राज्य और योगके आठों ऐश्वर्य आदिकी तो बात ही क्या है, अपुनरावर्ती मोक्षको भी नहीं चाहता।' ऐसे भक्तोंके लिये भगवान् क्या कहते हैं, सुनिये—

अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ॥

(श्रीमद्भा० ११। १४। १६)

'उनकी चरणरजसे अपनेको पवित्र करनेके लिये मैं सदा उनके पीछे-पीछे घूमा करता हूँ।' इसी कारण गीतगोविन्दकारने 'देहि मे **पदपल्लवमुदारम्**' कहकर भगवान्‌के द्वारा श्रीराधाजीके पदकमलकी चाह करायी है और इसी आधारपर रसिक रसखानिजीने कहा है—

ब्रह्म मैं ढूँढ़्यो पुरानन गानन, बेद रिचा सुनि चौगुने चायन।
देख्यो सुन्यो कबहूँ न कितै, वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन ॥
टेरत हेरत हारि पर्‌यो, रसखानि बतायो न लोग-लुगायन।
देख्यो, दुर्‌यो वह कुंज कुटीरमें बैठ्यो पलोटत राधिका-पायन ॥

यद्यपि भक्त कभी यह चाहता नहीं कि भगवान् प्रियतम मेरे पैर दाबें, परंतु वहाँ तो सर्वथा ऐक्य होता है। कोई छोटा-बड़ा रहता ही नहीं। महाभारतमें सखा भक्त अर्जुनके साथ भगवान् श्रीकृष्णके व्यवहारका वर्णन सञ्जयने कौरवोंकी राजसभामें किया है। अर्जुनसे ही जब वैसा व्यवहार था, तब गोपियोंके समान भक्तोंकी बात ही निराली है। गोपियोंका परकीयाभाव दिव्य है। लौकिक विषय-विमोहित मनवाले मनुष्य इसका यथार्थ भाव नहीं समझकर अपने वृत्तिदोषसे दोषारोपण कर बैठते हैं। असलमें व्रजगोपिकाओंका प्रेम अत्यन्त उच्चतम अवस्थापर स्थित है। उसमें सभी रसोंका विकास है, परंतु मधुर रस प्रधान है। यह मधुर रस उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ प्रेम, स्नेह,

मान, राग, अनुराग और भावपर्यन्त पहुँच जाता है। भावकी पराकाष्ठा ही महाभाव है। यह महाभाव केवल प्रातःस्मरणीया व्रजदेवियोंमें ही था। श्रीभगवान्‌ने प्रेमिक भक्तोंकी प्रेमकामना पूर्ण करनेके लिये व्रजमण्डलमें इस सच्चिदानन्दमयी दिव्य लीलाको प्रकट किया था। गोपी-प्रेमकी यह पवित्र लीला भगवान्‌ने रमणाभिलाषासे अथवा गोपियोंकी काम-वासना-तृप्तिके लिये नहीं की थी, न तो भगवान्‌में रमणाभिलाषा थी और न गोपियोंमें कामवासना ही। यह तो की गयी थी जगत्‌के जीवोंके कामनाशके लिये। रासलीला प्रकरणको समाप्त करते हुए मुनिवर शुकदेवजी कहते हैं—

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद् यः।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः॥

(श्रीमद्भा० १०।३३।४०)

जो धीर पुरुष व्रजबालाओंके साथ भगवान् विष्णुके (श्रीकृष्णके) इस रासविहारकी कथाको श्रद्धापूर्वक सुने या पढ़ेगा, वह शीघ्र ही भगवान्‌की पराभक्तिको प्राप्तकर हृदयके रोगरूप कामविकारसे छूट जायगा।'

जिस लीलाके भलीभाँति समझकर श्रद्धापूर्वक सुनने-पढ़नेसे ही हृद्रोग—कामविकार नष्ट होकर पराभक्ति प्राप्त होती है, उस लीलाके करनेवाले नायक श्रीभगवान् और उनकी प्रेयसी नायिका गोपिकाओंमें कामविकार देखना या कलुषित मानवी व्यभिचारकी कल्पना करना कामविमोहित विषयासक्त मनुष्योंके बुद्धि-दोषका ही परिणाम है। व्रजलीला परम पवित्र है, इस बातको प्रेमीजन भलीभाँति जानते हैं और इसीसे नारद-सदृश देवर्षि और शिव-सदृश महान् देव उसमें सम्मिलित होनेकी वाञ्छासे गोपीभावमें दीक्षित होते हैं। मृत्युकी बाट

देखनेवाले राजा परीक्षित्‌को महाज्ञानी शुकदेवजी इसीलिये व्रजलीला सुनाते हैं, जिससे सहज ही पराभक्तिको प्राप्तकर परीक्षित् भगवान्‌के असली तत्त्वको जान लें और भगवान्‌को प्राप्त हो जायँ। भगवान् श्रीकृष्णने ज्ञाननिष्ठाके नामसे पराभक्ति-प्राप्तिका क्रम (और उसका फल) बतलाते हुए कहा है—

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन् विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च॥
विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः॥
अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥
ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥
भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥

(गीता १८।५१—५५)

अर्थात् 'जब मनुष्य विशुद्ध बुद्धिसे युक्त, एकान्तसेवी, मिताहारी, मन-वाणी-शरीरको जीता हुआ, सदा वैराग्यको धारण करनेवाला, निरन्तर ध्यानपरायण, दृढ़ धारणासे अन्तःकरणको वशमें करके, शब्द-स्पर्शादि विषयको त्यागकर, राग-द्वेषको नष्ट करके, अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध और परिग्रहको छोड़कर ममतारहित, शान्त हो जाता है, तभी वह ब्रह्मप्राप्तिके योग्य होता है। फिर ब्रह्मभूत होकर सदा प्रसन्नचित्त रहनेवाला वह न किसी वस्तुके लिये शोक करता है और न किसी वस्तुकी आकाङ्क्षा ही करता है और सब प्राणियोंमें समभावसे भगवान्‌को देखता है तब उसे मेरी पराभक्ति प्राप्त होती है। उस पराभक्तिके द्वारा मेरे तत्त्वको भलीभाँति जानता है कि

मैं किस प्रभाववाला हूँ। इसी पराभक्तिसे मुझको तत्त्वसे जानकर भक्त तदनन्तर ही मुझमें मिल जाता है।'

ध्यानपूर्वक देखा जाय तो गोपियोंमें उपर्युक्त सभी बातें पूर्णरूपसे थीं। विशुद्ध बुद्धिका इससे बढ़कर क्या सबूत हो सकता है कि वह सदा भगवान् श्रीकृष्णमें ही लगी रहे। श्रीकृष्ण-मिलनके लिये एकान्त-सेवन, शरीरसे ही नहीं मनसे भी एकान्त रहना, खान-पान भूल जाना, मन-वाणी-शरीरको विषयोंसे खींचकर एकमात्र प्रियतम श्रीकृष्णमें लगाये रखना, घर-परिवार आदि किसी भी भोग-पदार्थमें राग न रखना, निरन्तर प्रियतम श्रीकृष्णके ध्यानमें संलग्न रहना, मनमें श्रीकृष्णकी दृढ़ धारणासे अन्तःकरणको श्रीकृष्णमय बनाये रखना, श्रीकृष्ण विषयक पदार्थोंके सिवा, अन्य सभी शब्द-स्पर्शादि विषयोंको त्याग देना, जगत्की दृष्टिसे किसी भी पदार्थमें राग-द्वेष रखना, अहङ्कार, बल, दर्प, काम, क्रोध और परिग्रह सबका श्रीकृष्णमें उत्सर्ग कर देना, घर-द्वार ही नहीं स्वर्ग और मोक्षमें भी ममत्व न रखना, चित्तको सदा श्रीकृष्णके स्वरूपसे समाहित रखकर जगत्के विषयोंसे शान्त रखना और श्रीकृष्णको ब्रह्मरूपसे पहचानकर, उनसे मिलनेके लिये व्याकुल होना गोपियोंके चरित्रमें पद-पदपर प्राप्त होता है। इसके सिवा उनका नित्यानन्दमयी होकर सांसारिक पदार्थोंकी प्राप्ति-अप्राप्तिमें हर्ष-शोकसे रहित होना और सर्वत्र श्रीकृष्णको सब प्राणियोंमें देखना भी प्रसिद्ध ही है। साधकोंको दीर्घकालके महान् साधनसे प्राप्त होनेवाली ये बातें गोपियोंमें स्वाभाविक थीं, इसीसे भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें अपना रहस्य खोलकर बतला दिया और अपने स्वरूपका साक्षात् दर्शन कराकर उनके साथ दिव्य क्रीड़ा करके उन्हें श्रीकृष्णरूप बना लिया। ज्ञानियोंसे विशेषता यह रही कि इसमें सारी बातें केवल विचारके आधारपर न रहकर प्रत्यक्ष इन्द्रियगम्य हो गयीं। साक्षात् परब्रह्म महान् सुन्दर द्विभुज मुरलीमनोहररूपधारी बनकर स्वयं भक्तोंके

साथ नाचे। अपनी रूपमाधुरीसे भक्तोंके चित्तको चुराकर, अपनी मुरलीध्वनिसे प्रेमी भक्तोंको खींचकर अपने पास बुला लिया और उन्हें सब प्रकार कृतार्थ किया। एक महात्माने दिव्यदृष्टिसे देखकर सखी-भावमें प्रवेश होकर कहा था—

शृणु सखि कौतुकमेकं नन्दनिकेताङ्गने मया दृष्टम्।
गोधूलिधूसराङ्गो नृत्यति वेदान्तसिद्धान्तः॥

'हे सखि! एक कौतुककी बात सुन! मैंने आज बाबा नन्दके आँगनमें वेदान्तके चरम सिद्धान्त ब्रह्मको गोधूलिधूसरिताङ्ग हुए नाचते देखा।'

ग्यानी बोध स्वरूप ह्वै होहिं ब्रह्ममें लीन।
निरखत पै लीला मधुर प्रेमी प्रेम प्रबीन॥
ग्यानी ढिग गंभीर हरि सच्चिद ब्रह्मानंद।
प्रेमी सँग खेलत सदा चंचल प्रेमानंद॥
ग्यानी ब्रह्मानंद सों रहत सदा भरपूर।
पै प्रेमी निरखत सुखद दुरलभ हरिको नूर॥
प्रेमी भाग्य सराहि मुनि, ग्यानी बिमल बिबेक।
चहैं सुदुरलभ प्रेमपद तजि निजपदकी टेक॥

श्रीकृष्णकी रूपमाधुरी

भगवान्‌की उस रूपमाधुरीका वर्णन कौन कर सकता है? वे एक बार जिसकी ओर प्रेमकी नजरसे देख लेते; उसीपर प्रेमसुधा बरसाकर उसे अमर कर देते, उसकी सारी विषयासक्तिको नष्ट कर अपना प्रेमी बना लेते। पण्डितराज जगन्नाथ कहते हैं—

रे चेतः कथयामि ते हितमिदं वृन्दावने चारयन्
वृन्दं कोऽपि गवां नवाम्बुदनिभो बन्धुर्न कार्यस्त्वया।
सौन्दर्यामृतमुद्गिरद्भिरभितः सम्मोह्य मन्दस्मितै-
रेष त्वां तव वल्लभांश्च विषयानाशु क्षयं नेष्यति॥

'रे चित्त ! तेरे हितके लिये तुझे सावधान किये देता हूँ। कहीं तू उस वृन्दावनमें गाय चरानेवाले, नवीन नील मेघके समान कान्तिवाले छैलको अपना बन्धु न बना लेना, वह सौन्दर्यरूप अमृत बरसानेवाली अपनी मन्द मुसकानसे तुझे मोहित करके तेरे प्रिय समस्त विषयोंको तुरंत नष्ट कर देगा।' अद्वैतसिद्धिकार मधुसूदन स्वामीजीको भी उसकी रूपछटाके फंदेमें पड़कर स्वाराज्य-सिंहासनसे च्युत होना पड़ा था। वे कहते हैं—

अद्वैतवीथीपथिकैरुपास्याः
स्वाराज्यसिंहासनलब्धदीक्षाः ।
शठेन केनापि वयं हठेन
दासीकृता गोपवधूविटेन ॥

'अद्वैतमार्गके अनुयायियोंद्वारा पूज्य तथा स्वाराज्यरूपी सिंहासनपर प्रतिष्ठित होनेका अधिकार प्राप्त किये हुए हमको गोपियोंके पीछे-पीछे फिरनेवाले किसी धूर्तने हठपूर्वक (जबरदस्ती, इच्छा न रहनेपर भी) अपने चरणोंका गुलाम बना लिया।' भक्त लीलाशुकजी उस बालकृष्णकी छविके जादूसे डरकर सबको सावधान करते हुए कहते है—

मा यात पान्थाः पथि भीमरथ्या
दिगम्बरः कोऽपि तमालनीलः ।
विन्यस्तहस्तोऽपि नितम्बबिम्बे
धूतः समाकर्षति चित्तवित्तम् ॥

'अरे पथिको ! उस रास्ते न जाना। वह गली बड़ी भयावनी है। वहाँ अपने नितम्बबिम्बपर हाथ रखे जो तमालके तुल्य नीले रंगका एक नंग-धड़ंग बालक खड़ा है, वह केवल देखनेमात्रका ही अवधूत है, असलमें तो वह अपने पास होकर निकलनेवाले किसी भी मुसाफिरके मनरूपी धनको लूटे बिना नहीं रहता।'

व्रजरससीले साह कुन्दनलालजी श्रीललितकिशोरीजी बने हुए कहते हैं—

नैन-चकोर मुख-चंदहूपै वारि डारौं,
वारि डारौं चित्तहि मनमोहन चित्तचोरपै।
प्रानहूकों वारि डारौं हँसन दसन लाल,
हरन कुटिलता औ लोचनकी कोरपै॥
वारि डारौं मनहिं सुअंग-अंग स्यामा-स्याम,
महल मिलाप रसरासकी झकोरपै।
अतिहि सुघरबर सोहत त्रिभंगी लाल,
सरबस वारौं वा ग्रीवाकी मरोरपै॥

सर्वस्व वार देनेपर भी वह फिर अपनी तिरछी चितवनकी बरछीसे प्रेमी भक्तको घायल करता है और बार-बार उसकी ओर झाँक-झाँककर, हँस-हँसकर घावपर नमक बुरकाता रहता है—

देखो री! यह नंदका छोरा बरछी मारे जाता है।
बरछी-सी तिरछी चितवनकी पैनी छुरी चलाता है॥
हमको घायल देख बेदरदी मंद-मंद मुसकाता है।
'ललितकिसोरी' जखम जिगरपर नौनपुरी बुरकाता है॥

श्यामकी तिरछी नजरसे घायल प्रेमीका यह जख्मेजिगर कभी सूख ही नहीं सकता, वह सदा हरा रहता है और उसकी पल-पलकी कसक ब्रह्मानन्दसे भी बढ़कर आनन्द दिया करती है। गोपियोंके हृदयमें यह घाव बहुत गहरा था। बड़े भाग्यसे यह दिनोंदिन बढ़नेवाला घाव होता है और स्वयं साँवरेके वैद्य बनकर आनेपर भी यह अच्छा नहीं होता। श्यामसुन्दरके दर्शनसे यह और भी बढ़ जाता है, परंतु अदर्शन कभी सुहाता नहीं। एकमात्र वही वैद्य हैं, परंतु वैद्य घाव बढ़ाते हैं, घटाते नहीं। इस घावके बढ़नेमें ही सुख है, इसीलिये घावसे कराहना और बार-बार घाव बढ़ानेका कार्य करना, यही बस

प्रेमियोंके जीवनका नित्य परमसुखदायी दुःख हो जाता है।

मुरली और रास

यही हाल उसकी मुरलीका है। जब वह बजती है, तब औरोंकी बात ही क्या है, निर्बीज-समाधिमें स्थित योगियोंकी समाधि भी टूट जाती है।

वह वंशीध्वनि निकलते ही जडको चेतन और चेतनको जड बना देती है। इसीसे एक बार एक गोपीने व्यंगसे मुरलीकी महिमा गाते हुए कहा था—

मुरहर रन्धनसमये मा कुरु मुरलीरवं मधुरम्।
नीरसमेधो रसतां कृशानुरप्येति कृशतरताम्॥

'हे मुरारे ! अरे, मेरे रसोई बनाते समय तो तुम कृपा कर अपनी मुरलीकी मधुर तान न छेड़ा करो, क्योंकि उस ध्वनिके आते ही मेरी सूखी लकड़ियाँ हरी हो रस टपकाने लगती हैं और आग बुझ जाती है, जिससे रसोई भी नहीं हो पाती है।' दूरसे मुरलीकी टेर सुनकर एक सखी दूसरीसे कहती है—

सुनती हौ कहा, भजि जाहु घरै बिंध जाओगी नैनके बाननमें।
यह बंसी 'निवाज' भरी बिषसों बगरावति है बिष काननमें॥
अब ही सुधि भूलिहौ भोरी भटू भँवरो जब मीठी-सी ताननमें।
कुलकानि जो आपनि राखि चहौ दे रहौ अंगुरी दोउ काननमें॥

इस वंशीकी और रासकी कुछ आलोचना किये बिना गोपी-प्रेमकी चर्चा अधूरी रह जाती है। इसलिये इन विषयोंपर भी कुछ विचार करना है।

श्रीकृष्णमिलनके लिये कात्यायनीकी पूजा करनेवाली गोपियोंको वर देनेके दिन भगवान्‌ने उनके वस्त्र हरण कर उनके निर्मल और अनन्य प्रेमकी परीक्षा की। उनका सारा भेद-ज्ञान हरण करके उन्हें निर्मल प्रेमपथकी अधिकारिणी समझकर मिलनका वरदान दिया।

वस्त्रहरणलीलामें पाप देखना पापबुद्धिका परिणाम है। जीवात्माका परमात्माके सामने कोई पर्दा नहीं रह सकता। पर्दा मायामें ही है। सबके अन्तरात्मा भगवान्‌से कौन जीवात्मा अपने अङ्गोंको छिपानेका भाव रख सकता है? वह जबतक छिपाता है तबतक परमात्माको परमात्मा न समझकर अपने पृथक्त्वका अभिमान बनाये रखता है। चीरहरणसे गोपियोंका यह मोह भङ्ग हुआ। उन्होंने श्रीकृष्णको परमात्मा समझा और जीवभावसे वे अभिमानके पर्देको तोड़कर भेदमूलक मायाके वस्त्रोंसे सर्वथा रहित होकर सर्वात्मरूप प्रभुके सामने आ गयीं।

इसके कुछ दिनों बाद शरद्‌पूर्णिमा आयी। भगवान्‌के मिलनका दिन आया। शारदीया रजनी, प्रफुल्ल मल्लिकापूर्ण सुधांशुकी सुधामयी मधुर किरणें आदि उद्दीपन भावोंसे गोपियोंके हृदयमें एक अलक्ष्य आकाङ्क्षा जाग उठी, मानो उनका हृदय किसी अलभ्य वस्तुको चाहने लगा। यह थी श्रीकृष्णमिलनकी कामना।

बस, इसी समय श्रीकृष्णकी मोहन मुरली बज उठी। शारद सुधाकरकी ज्योत्स्नामें, नील यमुनाके निर्मल सैकतमें, मन्दानिलसे आन्दोलित माधवी-कुञ्जमें आत्माराम, पूर्णकाम, योगेश्वर, नित्य नवनटवर मोहनकी मधुर मुरलीसे विश्व-विमोहन प्रेमके आवाहनका अनङ्ग-वर्धक, आनन्ददायक संगीत प्रारम्भ हो गया। श्रीशुकदेवजी कहते हैं—

निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धनं
व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः।
आजग्मुरन्योन्यमलक्षितोद्यमाः
स यत्र कान्तो जवलोलकुण्डलाः॥

(श्रीमद्भा० १०।२९।४)

'उस अनङ्गवर्धन (श्रीकृष्ण-मिलन-कामनाको बढ़ानेवाले)

गानके कानोंमें पड़ते ही समस्त व्रज-वनिताओंका मन श्रीकृष्णमय हो गया। वे उसी समय तुरंत सब कुछ छोड़कर अपने प्रियतम श्रीकृष्णके पास चली गयीं। उतावलीके कारण किसीने किसीको साथ लेनेका भी कोई प्रयत्न नहीं किया (सब अलग-अलग ही, जो जिस अवस्थामें थी उसी अवस्थामें, सब कुछ भूलकर दौड़ पड़ीं)। उस समय वे इतने वेगसे चलीं कि सारे रास्ते उनके कानोंके कमनीय कुण्डल हिलते रहे।'

अनङ्गके बढ़ जानेपर वे अपने-अपने पतियोंके पास न जाकर श्रीकृष्णके पास क्यों गयीं? इसमें कारण है—उनका अनङ्ग लौकिक काम नहीं था। श्रीकृष्णमिलनकी योगिजनदुर्लभ प्रबल कामना थी। जो किसी अङ्गवाली न होनेपर भी बड़ी प्रबल थी और जिसने उनको बरबस श्रीकृष्णकी ओर दौड़नेको बाध्य कर दिया था। वंशीध्वनि अखण्डानन्द प्रदान करनेके लिये भगवान्‌का अनिवार्य निमन्त्रण था, उसे वे कैसे टाल सकती थीं? उसे कोई भी नहीं टाल सकता। वह वंशी कैसे बजी, उसकी ध्वनि कहाँतक गयी?

रुन्धन्नम्बुभृतश्चमत्कृतिपरं कुर्वन् मुहुस्तुम्बुरुं
ध्यानादन्तरयन् सनन्दनमुखान् विस्मापयन् वेधसम्।
औत्सुक्यावलिभिर्बलिं चटुलयन् भोगीन्द्रमाघूर्णयन्
भिन्दन्नण्डकटाहभित्तिमभितो बभ्राम वंशीध्वनिः॥

'वंशीका वह पवित्र संगीत अपनी सुधामयी स्वरलहरीसे समस्त वृन्दावनको आप्लावित करता हुआ, आकाशमें पहुँचकर जलदसमूहको स्तम्भित करता हुआ, स्वर्गमें देवगायक तुम्बुरुको पुनः-पुनः चकित करता हुआ ब्रह्मलोकमें सनन्दनादि महामुनियोंकी निर्गुण ब्रह्मकी निर्बीज समाधिको भङ्ग करता हुआ, स्वयं प्रजापति ब्रह्माको विस्मित करता हुआ; यों ऊर्ध्वलोकमें अपनी विजयपताका फहराकर नीचे पातालकी ओर चला और वहाँ राजा बलिको चौंकाकर, नागराज अनन्त शेषनागके सहस्र फणोंको कँपाकर, अखिल ब्रह्माण्डकटाहको भेदकर श्रीकृष्णका वह वंशी-संगीत सब ओर फैल गया।'

परंतु इतनेपर भी इस आवाहन-संगीतको सुना भक्तोंने ही और वे उसी समय दौड़ चले। अब भी श्यामकी यह वंशी वैसे ही बजती है और प्रेमी भक्त अब भी उसे सुनते हैं। अस्तु !

भक्तवर श्रीनन्ददासजी कहते हैं—

सुनत चलीं ब्रज-बधू गीत-धुनिको मारग गहि।
भवन भीत द्रुम कुंज पुंज कितहू अटकी नहि ॥
नाद अमृतको पंथ रँगीलो सुच्छम भारी।
तेहि मग ब्रज तिय चलैं, आन कोउ नहिं अधिकारी ॥

वे मुरलीकी ध्वनिको लक्ष्य करके उन्मत्तकी भाँति चलीं और भगवान् श्रीकृष्णके चरण-प्रान्तोंमें जा पहुँचीं। यहाँ फिर प्रेम-परीक्षा होती है। खास करके दो बातें देखती हैं—(१) गोपियोंका किसी सांसारिक विषयोंमें मन आसक्त है या नहीं और (२) वे श्रीकृष्णको साक्षात् भगवान् समझती हैं या नहीं। इसीलिये पहले-पहल भगवान्ने उनसे कहा—

स्वागतं वो महाभागाः प्रियं किं करवाणि वः।
व्रजस्यानामयं कच्चिद् ब्रूतागमनकारणम् ॥

(श्रीमद्भा० १०। २९। १८)

'हे महाभागाओ ! तुम्हारा स्वागत है ! कहो, मैं तुम्हारा क्या प्रिय कार्य करूँ ? व्रजमें सब कुशल तो है, इस समय अपने यहाँ आनेका कारण तो बताओ ?'

गोपियाँ भगवान्की ऐसी वाणी सुनकर मुसकरा दीं, कुछ बोलीं नहीं। भगवान् फिर बोले—

रजन्येषा घोररूपा घोरसत्त्वनिषेविता।
प्रतियात व्रजं नेह स्थेयं स्त्रीभिः सुमध्यमाः ॥

(श्रीमद्भा० १०। २९। १९)

'हे सुन्दरियो ! देखो, रात्रि बड़ी घोर है। इस समय बहुत-से

भयानक जीव इधर-उधर फिर रहे हैं। इसलिये तुमलोग तुरंत व्रजको लौट जाओ। यहाँ स्त्रियोंका अधिक देर ठहरना ठीक नहीं है।'

गोपियोंने कुछ उत्तर नहीं दिया। भगवान् फिर बोले—

मातरः पितरः पुत्रा भ्रातरः पतयश्च वः।
विचिन्वन्ति ह्यपश्यन्तो मा कृध्वं बन्धुसाध्वसम्॥

(श्रीमद्भा० १०।२९।२०)

'तुम्हें घरमें न देखकर तुम्हारे माता-पिता, पुत्र, भाई और पति आदि तुम्हें ढूँढ़ते होंगे। तुम यहाँ ठहरकर अपने घरवालोंको व्यर्थ घबराहटमें न डालो।'

यहाँ भगवान्ने सांसारिक अति निकटके सम्बन्धियोंकी बात याद दिलाकर यह जानना चाहा कि देखें गोपियोंके मनमें उनके प्रति मोह या उनसे भय है या नहीं। ये मायिक जगत्में हैं या ईश्वराभिमुखी हैं? परंतु गोपियाँ इस परीक्षामें पास हो गयीं। ऋषिपत्नियाँ यहीं, इसी प्रसङ्गपर घर लौट गयी थीं। गोपियाँ कुछ नहीं बोलीं। उनके चित्तमें संसारकी आत्मीयताका कुछ भी मोह नहीं जाग्रत् हुआ। वे भगवान् परमात्मा श्रीकृष्णके प्रेममें डूब रही थीं।

चाँदनी रातकी सुन्दर शोभा देखकर गोपियोंके मनोंमें श्रीकृष्ण-प्रेम जागा था, यह जागृति लौकिक थी या दिव्य? इसीको जाँचनेके लिये भगवान्ने फिर कहा—

दृष्टं वनं कुसुमितं राकेशकररञ्जितम्।
यमुनानिललीलैजत्तरुपल्लवशोभितम्॥
तद् यात मा चिरं गोष्ठं शुश्रूषध्वं पतीन् सतीः।
क्रन्दन्ति वत्सा बालाश्च तान् पाययत दुह्यत॥

(श्रीमद्भा० १०।२९।२१-२२)

'तुम रजनीशकी रश्मियोंसे रञ्जित और यमुनाजलके स्पर्शसे शीतल मन्द-मन्द पवनकी गति हिलते हुए नवपल्लवोंसे सुशोभित

एवं कुमुद-कुसुम-मण्डित, मनोहर इस वृन्दावनकी शोभा देख चुकी। अब हे सतियो! देर न करो, तुरंत ही व्रज लौट जाओ और अपने-अपने पतियोंकी सेवा करो। देखो, बालक और तुम्हारी गायोंके बछड़े रो रहे होंगे, जाकर दूध पिलाओ और गायें दुहो।'

'सती' स्त्रीके लिये पति-सेवासे बढ़कर और कौन-सा महत्त्वका कार्य हो सकता है? भगवान्‌ने 'सती' सम्बोधन करके पतियोंकी याद दिलायी। माताको पुत्र और ग्वालिनोंको गौ-बछड़े बड़े प्रिय होते हैं; उनका भी करुण शब्दोंमें स्मरण कराया। इनका मन पति-पुत्रोंमें है या सबसे विरक्त होकर केवल मुझ भगवान्‌में है—यह जाननेके लिये भगवान्‌ने इतनी बातें कहीं। गोपियाँ अब भी कुछ नहीं बोलीं। अबकी बार अपने बाह्य सौन्दर्यकी महिमा दिखलाकर—यह जाननेके लिये ये केवल सौन्दर्यपर ही मोहित हैं या मुझे ईश्वर समझकर आयी हैं, भगवान्‌ने कहा—

अथवा मदभिस्नेहाद् भवत्यो यन्त्रिताशयाः।
आगता ह्युपपन्नं वः प्रीयन्ते मयि जन्तवः॥

(श्रीमद्भा० १०।२९।२३)

'अथवा यदि तुम मेरे स्नेहके कारण आसक्तचित्त होकर मुझे देखने आयी हो तो कोई दोषकी बात नहीं, क्योंकि मुझको देखकर सभी प्राणी प्रसन्न होते हैं।' परंतु—

भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मो ह्यमायया।
तद्बन्धूनां च कल्याण्यः प्रजानां चानुपोषणम्॥
दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा।
पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी॥
अस्वर्ग्यमयशस्यं च फल्गु कृच्छ्रं भयावहम्।
जुगुप्सितं च सर्वत्र औपपत्यं कुलस्त्रियाः॥

(श्रीमद्भा० १०।२९।२४—२६)

'हे कल्याणियो ! पति और उसके बन्धुओंकी निष्कपट भावसे सेवा करना तथा सन्तानका पालन-पोषण करना ही स्त्रियोंका परम धर्म है। जिन स्त्रियोंको शुभ गति पानेकी इच्छा हो वे अपने अपातकी पतिका किसी प्रकार भी त्याग न करें, चाहे वह बुरे स्वभाववाला, अभागा, वृद्ध, मूर्ख, रोगी या निर्धन ही क्यों न हो ? कुल-स्त्रियोंके लिये उपपतिकी (जारकी) सेवा करना सर्वथा निन्दनीय है; इससे स्वर्गकी प्राप्ति नहीं होती, संसारमें अपकीर्ति होती है। यह अत्यन्त ही निन्दनीय और भयदायक कार्य है।'

भगवान्ने सब बातें खोलकर कह दीं। यदि मुझको मनुष्य मानकर कामाभिलाषासे आयी हो तो नरकगामिनी होओगी, संसारमें अपयश होगा ? क्योंकि यही वेदधर्म है।

इस उपदेशसे भी गोपियाँ नहीं हिलीं, तब भगवान्ने उन्हें जाँचनेके लिये फिर कहा—

श्रवणाद् दर्शनाद् ध्यानान्मयि भावोऽनुकीर्तनात्।
न तथा सन्निकर्षेण प्रतियात ततो गृहान्॥

(श्रीमद्भा० १०।२९।२७)

(अच्छा मुझमें कुछ महत्त्व समझकर आयी हो तो भी) 'मेरे गुण-श्रवण, दर्शन, ध्यान और कीर्तनसे मुझमें जैसा प्रेम होता है वैसा पास रहनेसे नहीं होता, इसलिये तुम अपने घरोंको लौट जाओ।' ऋषिपत्नियाँ इसी प्रकारकी बात सुनकर लौट गयी थीं। परंतु गोपियाँ नहीं लौटीं, ऋषिपत्नियोंने भगवान् श्रीकृष्णको भगवान् तो जान लिया था; परंतु घरोंमें उनकी ममता थी। गोपियाँ संसारसे सर्वथा वैराग्यवती और भगवान्की महिमासे पूर्ण परिचित थीं। गोपियाँ इस बातको जानती थीं कि भगवान् समस्त जगत्के आत्मा हैं, हमारे पतियोंके, हमारे पुत्रोंके—सबके एकमात्र आत्मा हैं। जगदात्मा भगवान्में औपपत्यकी (जारपनेकी) कभी कल्पना ही नहीं हो सकती, बड़े-बड़े

ऋषि, मुनि, तपस्वी, योगी संसारके सारे बन्धनोंको तोड़कर सबसे उपराम होकर जिन सच्चिदानन्दघन प्रभुकी प्राप्ति चाहते हैं, वही साक्षात् परमात्मा सुन्दर प्रियतमके रूपमें हमारे सामने खड़े हैं, उन्हींके चरणोंमें हम उपस्थित हैं। अब इन्हें छोड़कर कहीं जाना मूर्खता नहीं तो क्या है। अतः प्रेममयी गोपियाँ आँखोंमें आँसू भरकर प्रणयकोपके कारण गद्गद हुई वाणीसे बोलीं—

मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं
सन्त्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम्।
भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान्
देवो यथाऽऽदिपुरुषो भजते मुमुक्षून्॥
यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरङ्ग
स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम्।
अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे
प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बन्धुरात्मा॥

(श्रीमद्भा० १०। २९। ३१-३२)

न खलु गोपिकानन्दनो भवा-
नखिलदेहिनामन्तरात्मदृक्।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये
सख उदेयिवान् सात्वतां कुले॥

(श्रीमद्भा० १०। ३१। ४)

'हे सर्वव्यापक! आपको ऐसे कठोर शब्द नहीं कहने चाहिये। हम अन्य समस्त वियषोंको छोड़कर एकमात्र आपके चरणकमलोंमें ही अनुरक्त हैं। अतः जिस प्रकार आदिपुरुष श्रीनारायण मुमुक्षुओंको अपनाते हैं, आप भी हमलोगोंको इसी प्रकार ग्रहण कीजिये, कभी त्यागिये नहीं। हे कृष्ण! आप स्वयं धर्मको जाननेवाले हैं (सबसे बढ़कर धर्म तो आपके चरणोंका आश्रय है। फिर आप धर्मविद् होकर

कैसे हमें लौट जानेको कहते हैं ?) आपने जो कहा कि पति, पुत्र और बन्धु-बान्धवोंकी सेवा करना ही स्त्रियोंका धर्म है सो यह उपदेश आप ईश्वरमें ही रहे, क्योंकि इस उपदेशके आश्रय आप ही हैं। आप ही धर्मकी अन्तिम गति हैं। पति, पुत्र आदि समस्त देहधारियोंके आप ही प्रिय बन्धु और आत्मा हैं। निश्चय ही आप केवल यशोदाके पुत्र नहीं हैं, बल्कि आप समस्त देहधारियोंके अन्तःकरणके साक्षी हैं। हे सखे ! ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे आपने सम्पूर्ण जगत्की रक्षाके लिये यदुकुलमें अवतार लिया है।'

हमें छलिये नहीं। आप साक्षात् परमेश्वर हैं, आपके बिना पति, पुत्रादि किसीकी भी सत्ता और सम्भावना नहीं है। सबके आश्रय, सबकी गति, समस्त धर्मोंके अधिष्ठान, ईश्वरोंके ईश्वर आपको छोड़कर हम कहाँ जायँ और क्यों जायँ ?

गोपियाँ इस बातको जानती थीं कि भगवान् श्रीकृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम, विज्ञानानन्दघन, विश्वात्मा परमेश्वर हैं। परमेश्वर ही सबके आत्मा और चरम गति हैं, अब उन परमात्माको पाकर गोपियाँ वहाँसे क्यों हटने लगीं ? उन्होंने कहा—

कुर्वन्ति हि त्वयि रतिं कुशलाः स्व आत्मन्
नित्यप्रिये पतिसुतादिभिरार्तिदैः किम्।
तन्नः प्रसीद परमेश्वर मा स्म छिन्द्या
आशां भृतां त्वयि चिरादरविन्दनेत्र॥
चित्तं सुखेन भवतापहृतं गृहेषु
यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये॥
पादौ पदं न चलतस्तव पादमूलाद्
यामः कथं व्रजमथो करवाम किं वा॥

(श्रीमद्भा० १०।२९।३३-३४)

'शास्त्रज्ञ पुरुष अपने नित्य प्रिय आत्मारूप आपहीमें प्रेम करते

हैं। इस लोकमें संसार-दुःख देनेवाले पति-पुत्रादिसे उन्हें क्या प्रयोजन है ? अतः हे परमेश्वर ! आप हमपर प्रसन्न होइये। हमारी चिरकालकी आशा-लताको काटिये नहीं। अब हम किसी प्रकार घर नहीं जा सकतीं। हमारा जो चित्त सुखपूर्वक घरमें आसक्त था, उसको आपने चुरा लिया, हमारे हाथ घरके कामोंमें लगे थे, वे भी चेष्टाहीन हो गये और हमारे पैर भी आपके चरणकमलोंसे एक पग भी दूर नहीं हटना चाहते। हम किस प्रकार घर जायँ और वहाँ जाकर अब करें भी क्या ?'

भगवान्ने भक्तकी परीक्षा की, परीक्षामें भक्त उत्तीर्ण हो गया, तब उसे मनोवाञ्छित फल दिया। योगेश्वरेश्वर भगवान्ने आत्माराम होकर गोपियोंके साथ आत्मरमण किया। इसके बाद भगवान् एक बार अन्तर्धान हो गये। पीछेसे गोपियाँ भगवान्के अदर्शनसे व्याकुल होकर भगवान्को ढूँढ़ती और विविध विलाप करती रहीं—

दोहा

कुंज कुंज ढूँढ़त फिरीं खोजत दीनदयाल।
प्राननाथ पाए नहीं, बिकल भईं ब्रजबाल॥

रोला

बिरहाकुल ह्वै गईं सबै पूछत बेला-बन।
को जड़, को चैतन्य, न कछु जानत बिरही जन॥
हे मालति, हे जाति, जूथके, सुनि हित दै चित।
मान-हरन मन-हरन लाल गिरधरन लखे इत॥
हे केतकि, इतते कितहूँ चितये पिय रूसे।
कै नँदनंदन मंद मुसुकि तुम्हरे मन मूसे॥
हे मुक्ताफल बेल, धरे मुक्ताफल-माला।
देखे नैन बिसाल मोहना नँदके लाला॥
हे मंदार उदार, बीर करबीर महामति।
देखे कहुँ बलबीर धीर मन-हरन धीर-गति॥

हे चंदन दुखदंदन, सबकी जरन जुड़ावहु ।
नँदनंदन जगबंदन, चंदन हमहिं बतावहु ॥
पूछो री इन लतनि फूल रहिं फूलनि जोई ।
सुंदर पियके परस बिना अस फूल न होई ॥
हे सखि, हे मृगबधू ! इन्हें किन पूछहु अनसरि ।
डहडहे इनके नैन अबहिं कहुँ देखे हैं हरि ॥
अहो सुभग बनगंध पवन-सँग थिर जु रही चलि ।
सुखके भवन दुख-दवन रवन इतते चितए बलि ॥
हे चंपक, हे कुसुम, तुम्हैं छबि सबसों न्यारी ।
नैक बताय जु देउ जहाँ हरि कुंज-बिहारी ॥
हे कदंब, हे निंब, अंब, क्यों रहे मौन गहि ।
हे बट, उतँग सुरंग बीर कहु तुम इत उत लहि ॥
हे अशोक, हरि सोक, लोकमनि पियहि बतावहु ।
अहो पनस सुभ सरस, मरत, तिय अमिय पियावहु ॥
जमुन निकटके बिटप पूछि भइँ निपट उदासी ।
क्यों कहिहैं सखि, अति कठोर ये तीरथबासी ॥
हे जमुना, सब जानि-बूझि तुम हठहि गहत हो ।
जो जल जग उद्धार, ताहि तुम प्रगट बहत हो ॥
हे अवनी नवनीत चोर चित चोर हमारे ।
राखे कतहुँ दुराय बता देउ प्रान पियारे ॥
हे तुलसी कल्यानि, सदा गोबिंद-पद-प्यारी ।
क्यों न कहो तुम नंदसुवनसों बिथा हमारी ॥
जहँ आवत तुम कुंज पुंज गहवर तरु छाईं ।
अपने मुख चाँदने चलत सुंदर बन माईं ॥

(नन्ददासजी)

वे बोलीं—

धन्या अहो अमी आल्यो गोविन्दाङ्घ्र्यब्जरेणवः ।
यान् ब्रह्मेशो रमा देवी दधुर्मूर्ध्न्यघनुत्तये ॥

(श्रीमद्भा० १० । ३० । २९)

'भगवान् श्रीगोविन्दकी चरणरज अत्यन्त पवित्र है। ब्रह्मा, शिव, रमा आदि भी इसको मस्तकपर धारण करते हैं, हमलोग भी इसे मस्तकपर धारण करें।' यों कहते-कहते वे श्रीकृष्णमें तन्मय होकर श्रीकृष्णकी-सी लीलाएँ करने लगीं।

इहि बिधि बन-बन ढूँढ़ि बूझि उनमतकी नाईं।
करन लगीं मनहरन लाल-लीला मन भाईं॥
मोहन लाल रसालकी लीला इनही सोहैं।
केवल तन्मय भईं कहु न जानैं हम को हैं॥

(नन्ददासजी)

तदनन्तर पुनः भगवान्‌ने प्रकट होकर प्रत्येकके साथ एक-एक अलग-अलग बनकर रास किया।

रासका पहला श्लोक है—

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः॥

'भगवान्‌ने योगमायाको आश्रित करके रमणकी इच्छा की। इसके बाद **'आत्मारामोऽप्यरीरमत्'** (आत्माराम होकर रमण किया), **'साक्षान्मन्मथमन्मथः'** (कामदेवको भी मोहनेवाले), **'आत्मन्यवरुद्धसौरतः'** (अस्खलित वीर्य) आप्तकाम, सत्यकाम, पूर्णकाम, योगेश्वरेश्वर आदि शब्द आते हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि भगवान्‌की यह लीला परम दिव्य थी। इसमें लौकिक कामगन्धको जरा-सा भी स्थान नहीं है। 'भगवान्' शब्दसे ही सिद्ध होता है कि भगवान्‌में औपपत्य नहीं हो सकता, क्योंकि वे सबके आत्माराम हैं।

जिनमें अणिमादि आठों ऐश्वर्य विद्यमान हों; जो धर्म, यश, श्री, वैराग्य और ज्ञानके अपार और अटूट भण्डार हों उन्हींको भगवान् कहते हैं—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसश्श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥

(श्रीविष्णुपुराण० ६।५।७४)

इस प्रकार षडैश्वर्यपूर्ण भगवान्‌में कामवासना या औपपत्य घट ही नहीं सकता। भगवान्‌ने यह सारी लीला अपनी योगमायाके द्वारा की। जिसकी जैसी इच्छा थी; भक्तवाञ्छाकल्पतरु भगवान्‌की योगमायासे उसे वैसा ही होता प्रतीत हुआ। योगमाया (भगवान्‌की अपनी दिव्य नित्य शक्ति)के प्रभावसे ही निःसङ्ग भगवान् सृष्टि, स्थिति और प्रलयकी लीला किया करते हैं। ऐन्द्रजालिक जिस प्रकार अपने इच्छानुसार दर्शकोंको मोहित करके मनमानी घटनाएँ उन्हें दिखाता है, इसी प्रकार भगवान्‌ने योगमायासे लीलाएँ कीं। राधिकाजी योगमायाका स्वरूप थीं। योगमायाके दूसरे एक स्वरूपको पहले भेजकर कंसको सन्देश दिलाया था और उसी योगमायाके द्वारा व्रजमें भगवान्‌ने दिव्य लीला-विलास किया। ब्रह्माके द्वारा गोप-बालकोंके और गोवत्सोंके हरण किये जानेपर पाँच वर्षके शिशु श्रीकृष्ण अपनी योगमायाके प्रभावसे स्वयं गोप-बालक, बछड़े और उनके सारे सामान—कपड़े, सींग, लाठी आदि बन गये। छः वर्षके बालक श्रीकृष्णने अपनी योगमायाके प्रभावसे कालियदमन और दावाग्निपान किया। इसी अवस्थामें भगवान्‌ने पतिरूपसे चाहनेवाली व्रजबालाओंका मायाभ्रम दूर करके सम्पूर्ण आत्मसमर्पणकी योग्यता प्रदान करनेके लिये उनके वस्त्र-हरणकी लीला की। इसी योगमायाके प्रभावसे सात वर्षके बालक श्रीकृष्णको व्रजयुवतियोंने नवयौवनसम्पन्न देखा। इसी अपनी योगमायाके प्रभावसे रासमण्डलमें भगवान् क्रीड़ा (रमण) करते हुए प्रतीत हुए। इसी योगमायाके बलसे प्रत्येक गोपीने गोपीनाथको अपने साथ देखा। बालक जैसे दर्पणमें अपने प्रतिबिम्बके साथ स्वच्छन्द

खेलता है, इसी प्रकार योगमायाके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णने अपनी छायास्वरूपा गोपियोंसे विलास किया—

रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभि-
र्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः ॥

(श्रीमद्भा० १० । ३३ । १७)

और योगमायाके प्रभावसे ही व्रजवासियोंने रासमें गयी हुई अपनी-अपनी पत्नियोंको अपने पास ही सोये हुए देखा—

मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान् स्वान् स्वान् दारान् व्रजौकसः ॥

(श्रीमद्भा० १० । ३३ । ३८)

योगमायाके प्रभावसे ही कंसके दरबारमें प्रवेश करते समय एकादशवर्षीय बालक श्रीकृष्णको मल्लोंने वज्रके समान, नागरिकोंने विलक्षण नरश्रेष्ठरूपमें, स्त्रियोंने मूर्तिमान् कामदेवके तुल्य, गोपोंने निज जनके सदृश, दुष्ट राजाओंने शासकके समान, वसुदेव और देवकीने पुत्ररूपमें, कंसने साक्षात् मृत्युरूपमें, विद्वानोंने विराट् पुरुषके रूपमें, योगियोंने परमतत्त्वके रूपमें और यादवोंने परम देवताके रूपमें देखा।

यह पूर्णकाम, सत्यकाम योगेश्वरेश्वर, षडैश्वर्यपूर्ण अघटन-घटनापटीयसी योगमायाके सञ्चालक, ह्लादिनी शक्तिके शक्तिमान्, भक्तवाञ्छा-कल्पतरु साक्षात् भगवान् और उन्हींके प्रतिबिम्बरूप भक्तोंकी दिव्य प्रेमलीला थी।

वास्तवमें श्रीकृष्णके साथ राधाका सर्वथा अभेद है। श्रीकृष्णके सौन्दर्य और माधुर्यका आस्वाद करनेवाली श्रीकृष्णकी अपनी ही ह्लादिनी शक्तिका नाम श्रीराधा है और श्रीकृष्णकी असंख्यशक्तियोंमेंसे जो शक्तियाँ इस ह्लादिनी शक्तिकी पुष्टिकारिणी हैं, वे ही श्रीराधाकी सहचरी सखियाँ श्रीगोपियाँ हैं। उनमें भी सखी, सहेली, सहचरी, दूतिका, दासी आदि कई भेद हैं; श्रीकृष्ण सुन्दरतम और मधुरतम हैं; इसीलिये वे रसराज, साक्षात् मन्मथमन्मथ, कोटि-मनोज-लजावनिहारे, कन्दर्पके मूलबीज—दिव्य, नित्य, नवीन मदन, विज्ञानानन्दघन परम पुरुषोत्तम हैं

और श्रीराधा, श्रीकृष्णके सौन्दर्य-माधुर्यसे मुग्ध श्रीकृष्ण-अनुरागमयी, श्रीकृष्णभावमयी परा-प्रकृति हैं। श्रीकृष्ण इस अपनी ही शक्तिद्वारा अपने सौन्दर्य-माधुर्यका रसास्वादन करते हैं। यही रसराज श्रीकृष्ण और रसरागिणी श्रीराधाकी पारस्परिक प्रेमसम्पत्ति है। यह प्रेम मानवीय नहीं है, यह नरलोकमें नहीं होता। इसीलिये श्रीचैतन्यचरितामृतमें कहा गया है—

परकीया भावे अति रसेर उल्लास।
व्रजबिना इहार अन्यत्र नाहि बास॥

इस अति रसके उल्लासरूप दिव्य परकीयाभावका व्रजके (दिव्य श्रीकृष्णप्रेममय गोलोकके) अतिरिक्त अन्यत्र कहीं निवास नहीं है और इसीलिये ये व्रजराज रसराज श्रीकृष्ण इस वृन्दावनको छोड़कर एक पैंड भी कहीं नहीं जाते—

वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति।

भगवान् श्रीकृष्ण शुद्ध चिन्मय, शुद्ध आनन्दमय, शुद्ध प्रेममय, शुद्ध रसमय हैं और ये श्रीकृष्णकान्ता गोपियाँ (श्रीकृष्णकी ह्लादिनी शक्ति राधा और श्रीराधा-कृष्णका सदा मिलन-संयोग करानेमें ही नित्य संलग्न रहनेवाली, श्रीराधासे भी बढ़कर सुखानुभव करनेवाली सखियाँ) शुद्ध चिन्मयी, शुद्ध आनन्दमयी, शुद्ध प्रेममयी और शुद्ध भावमयी हैं। ये और इनके देहादि हमलोगोंकी भाँति वस्तुतः रसमांसमय नहीं हैं, प्रापञ्चिक या कल्पित नहीं हैं, कर्मजन्य सुख-दुःख-भोग-निमित्त नहीं हैं; ये नित्य हैं। प्रपञ्चमय मायिक जगत्में प्रकट होनेपर भी मृतलोकमें लीला करनेपर भी मरणधर्मसे सर्वथा अतीत हैं। प्रेमसे छलकते हुए दिव्य नेत्रोंसे ही इनकी दिव्य मूर्तियोंके और नित्यरासके दर्शन हो सकते हैं।

श्रीमहादेवजीके प्रति स्वयं भगवान्के वचन हैं—

इमां तु मत्प्रियां विद्धि राधिकां परदेवताम्।
अस्याश्च परितः पश्चात् सख्यः शतसहस्रशः॥
नित्याः सर्वा इमा रुद्र यथाहं नित्यविग्रहः।
सखायः पितरो गोपा गावो वृन्दावनं मम॥

सर्वमेतन्नित्यमेव चिदानन्दरसात्मकम्।
इदमानन्दकन्दाख्यं विद्धि वृन्दावनं मम॥

(पद्म० पाताल० ५१। ७३—७५)

'ये श्रीराधिकाजी मेरी प्रिया हैं—इन्हें परमदेवता समझिये। इनके चारों ओर और पीछे लाखों सखियाँ हैं, जैसे मैं नित्य-विग्रह हूँ इसी प्रकार ये सब भी नित्य हैं। मेरे पिता, माता, सखा, गोप, गौ और यह मेरा वृन्दावन सभी नित्य और सच्चिदानन्दरसमय है। मेरे इस वृन्दावनका नाम आनन्दकन्द जानो।'

रसोल्लासतन्त्रमें भगवान् श्रीशिवजी देवी पार्वतीसे रासके सम्बन्धमें कहते हैं—

शरीरे देहानि यथा स्थूलं सूक्ष्मं च कारणम्।
तथैवान्यद् देहं ज्ञेयं भावदेहं प्रकीर्तितम्॥
कृपालब्धमिदं देहं सहजं जन्मजन्मनि।
अथवा साधनालब्धं कदापि वा महेश्वरि॥
न सगुणं निर्गुणं वा देहमिदं परात्मकम्।
कुत्रापि न हि द्रष्टव्यं लोके वृन्दावनं विना॥
सङ्गतं सह कृष्णेन गोपीनां चरितं च यत्।
तन्न कामादकामाद्वा भावदेहेन तत्कृतम्॥

अर्थात् 'जैसे शरीरके स्थूल, सूक्ष्म और कारण देह हैं, ऐसे ही एक भावदेह और होता है, यह देह भगवत्कृपासे प्राप्त होता है और उन्हींकी कृपासे जन्म-जन्मान्तरमें सहज ही मिल जाता है। (प्रायः ऐसा देह भगवान्के मुक्त परिकरोंका या कारक पुरुषोंका होता है।) अथवा हे महेश्वरि ! कभी-कभी साधनाके द्वारा भी इस देहकी प्राप्ति हो सकती है। यह भावदेह न (कर्मजन्य) सगुण है और न निर्गुण है, यह परमात्माका देह है जो वृन्दावनके सिवा और कहीं नहीं देखा जाता। श्रीकृष्णके साथ मिलकर गोपियाँ कृतार्थ हुई थीं, उनका यह मिलन

न कामजन्य था और न अकाम। वह भावदेहकृत था।' शिवजीके इन वाक्योंसे, श्रीकृष्ण और गोपियोंके प्रेमकी दिव्यता स्पष्ट है। गोपियोंका श्रीकृष्णके साथ रमण प्राकृत शारीरिक नहीं था, उसमें इन्द्रियोंका विषय तनिक भी नहीं था, अतएव इस दिव्य प्रेमलीलामें दोष देखना महापाप है।

अधिकार और कर्तव्य

परंतु एक बात ध्यानमें रखनेकी है कि ऐसी लीलाका नायक सिवा भगवान्के और कोई भी नहीं हो सकता। गोपीभावसे भगवान्की उपासना करनेका अधिकार सभी वैराग्य और प्रेमसम्पन्न जीवोंको है। गोपीभाव न तो केवल स्त्रियोंके ही लिये है, न स्त्रीके-जैसी पोशाक पहनकर स्त्री सजनेकी ही जरूरत है। जरूरत है गोपियोंको आदर्श मानकर उनके जैसा प्रेमभाव हृदयमें उत्पन्न करनेकी। यह उपासना भावनासिद्ध है, वेष-सिद्ध नहीं है। जिसमें ऐसा अपार्थिव निष्काम अनन्य प्रेम होगा, वही गोपीभावसे उपासना कर सकेगा। परंतु उपास्य केवल परमात्मा ही होंगे।

गोपीभावके उपासकोंकी धारणामें सभी लोग भावदेहसे प्रकृति हैं और पुरुषप्रधान अप्राकृत नवीन मदन व्रजेन्द्रनन्दन ही सबके एकमात्र पति—परम पति हैं। एक श्रीनन्द-नन्दनको छोड़कर वे दूसरे पुरुषकी कल्पना ही नहीं कर सकते। *'सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं।'* इस दिव्य प्रेमराज्यमें श्रीकृष्णके सिवा अन्य किसी भी पुरुषका और श्रीकृष्णप्रेम-रसभावितमति भक्तरूपा रमणीके सिवा अन्य किसी नारीका प्रवेशाधिकार या प्रवेशसामर्थ्य नहीं है। भगवान्की आनन्दमयी शक्तिके इस दिव्य-प्रेम-सदनमें दूसरे साधारण नर-नारियोंका प्रवेश सर्वथा निषिद्ध है। इस महामन्दिरमें प्रवेश करनेवालेको दरवाजेपर पहरा देनेवाली सखीको प्रवेशपत्र दिखलाना पड़ता है और श्रीकृष्ण-प्रेम-रसमें डूबी हुई बुद्धिरूपी उस प्रवेशपत्रीको वही प्राप्त कर सकता

है जो अपना तन-मन-धन प्रियतम प्रभुके अर्पण कर, सर्वथा कामशून्य होकर, काम-क्रोध-लोभादि विकारोंसे रहित होकर, वैराग्यरूप परम सुन्दर वस्त्रोंको धारणकर, दैवी गुणोंके अलङ्कारोंसे सुसज्जित होकर प्रेमकी वेदीपर अपनी बलि चढ़ा देता है—

प्रथम सीस अरपन करै, पाछे करै प्रबेस।
ऐसे प्रेमी सुजनको, है प्रबेस यहि देस॥

अतएव इसमें कोई भी मनुष्य कदापि श्रीकृष्ण नहीं बन सकता, चाहे वह महान् आचार्य, उपदेशक, प्रेमी, जीवन्मुक्त या दिव्य भाववाला ही क्यों न समझा जाता हो; इसलिये यदि कोई मनुष्य श्रीकृष्ण बनकर गोपीभावसे उपासना करानेका दावा करे तो उससे सदा दूर रहना चाहिये। खास करके स्त्रियोंके द्वारा गोपीभावसे अपनी उपासनाकी बात कहनेवाले मनुष्यको तो दुराचारी ही मानना चाहिये। साधक पुरुषके लिये तो स्त्रीकी बात दूर रही, स्त्रियोंके सङ्ग करनेवालेका सङ्ग भी त्याज्य है।

स्त्रीणां स्त्रीसङ्गिनांसङ्गं त्यक्त्वा दूरत आत्मवान्॥

(श्रीमद्भा० ११। १४। २९)

यह प्रेम अत्यन्त ही दुर्लभ है। इसमें देवताओंका भी अधिकार नहीं है। जो भगवान्‌के व्रजरसके रसिक हैं, व्रजभावके भावुक हैं, व्रज-प्रेमके प्रेमी हैं, वे भक्त ही इस अत्यन्त उच्च प्रेमरसका पान किया करते हैं। गोपीपदाश्रय करके गोपीभावका अवलम्बन करनेसे ही यह दुर्लभ, कामगन्धहीन, विषयाभिलाषाशून्य दिव्य प्रेम और प्रेमस्वरूप प्रेमाधार श्यामसुन्दरकी प्राप्ति हो सकती है। श्रीचैतन्यचरितामृतमें कहा है—

सेइ गोपीभावामृते जाँर लोभ हय,
बेदधर्म सर्व त्यजि सेइ कृष्णोरे भजय।
रागानुरागमार्गे भजे जेइ जन,
सेइ जन पाय व्रजे व्रजेंद्रनंदन॥

परंतु प्रेमी वेदधर्म छोड़ना नहीं चाहता, प्रेमके प्रकट होनेपर वह वेदधर्म ही अपने परमफलस्वरूप प्रेमपदको प्राप्त हुआ जानकर उस साधकको छोड़ देता है। जो जान-बूझकर छोड़ता है उसका तो पतन ही होता है—

एक नेम यह प्रेमको, नेम सबै छुटि जाहिं।
पै जो छाँडे जानिकै तहाँ प्रेम कछु नाहिं॥

यह पथ विषयकामियोंका नहीं है; यह मार्ग बाह्य वेषधारियोंका नहीं है। यह तो उन सच्चे त्यागियोंका पावन पथ है जो सारे जगत्का मोह और सारी कामनाएँ त्यागकर एकमात्र भगवान्को ही भजना चाहते हैं। जिनके हृदयमें भोग-लालसा है उनका तो इस मार्गपर पैर रखना मानो धधकती हुई अग्निमें कूदना या काल-सर्पके मुँहमें हाथ देना है—

प्रेम अमिय पीयौ चहै, करै बिषयसों नेह।
बिष ब्यापै, जारै हियौ, करै जरजरित देह॥

इसीलिये शुकदेवजी सबको सावधान करते हुए कहते हैं—

नैतत् समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः।
विनश्यत्याचरन् मौढ्याद् यथा रुद्रोऽब्धिजं विषम्॥
गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषामेव देहिनाम्।
योऽन्तश्चरति सोऽध्यक्षः क्रीडनेनेह देहभाक्॥
अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः।
भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत्॥

(श्रीमद्भा० १०। ३३। ३१, ३६-३७)

'शिवजी हलाहल पी गये, हरेक आदमी नहीं पी सकता। इसी प्रकार भगवान्ने यह लीला की, मनुष्य नहीं कर सकता। अतः असमर्थ मनुष्योंको भगवान्की इस लीलाका अनुकरण कभी मनसे भी नहीं करना चाहिये। यदि कोई मूर्खतावश करेगा तो वह नष्ट हो

जायगा। भगवान् तो गोपियोंके, उनके पतियोंके और सम्पूर्ण देहधारियोंके आत्मा हैं, साक्षीरूपसे सबके हृदयमें विराजमान हैं। उन्होंने लीलासे ही शरीर धारणकर अवतार लिया था और जीवोंपर कृपा करनेके लिये ही उस दिव्य देहसे ऐसी अलौकिक लीलाएँ की थीं जिन्हें सुन करके लोग भगवत्परायण हो जायँ।'

अतएव भगवान्‌की अलौकिक लीलाओंका अनुकरण न कर पवित्र गोपीभावको आदर्श मानकर अपना सब कुछ भगवान्‌के अर्पण करके बुद्धि, मन और इन्द्रियोंके द्वारा सब प्रकारसे भगवान्‌की सेवा करनी चाहिये और उनका नित्य-निरन्तर प्रेमपूर्वक चिन्तन करना चाहिये, भक्त बनना चाहिये, भगवान् नहीं।

जीव भगवान्‌का अंश है, इसलिये इसमें भी आनन्दांश है— ह्लादिनी शक्तिका अंश है। यदि मनुष्य आनन्दमयी शक्तिके इस अंशको भ्रमसे सुखरूप भासनेवाले अनित्य क्षणभङ्गुर दुःखमय भोगोंसे हटाकर भगवान्‌के सौन्दर्य-माधुर्य सुखकी ओर लगा दे तो उस अनित्य और भ्रमपूर्ण तुच्छ विषयानन्दके बदले उसे शाश्वत भूमानन्द-प्रेमानन्द मिल सकता है। मनुष्यकी यह आनन्दग्राहिणी शक्ति उन्नत और परिष्कृत होनेपर कैतवशून्य और कामगन्धशून्य होकर केवल श्रीकृष्ण-सौन्दर्य-माधुर्य-रसास्वादनके लिये लालायित हो उठती हैं, परंतु जबतक जीवकी यह आनन्दग्राहिणी शक्ति विषय-भोगोंमें डूबी रहती है, तबतक इसकी कृष्णाभिमुखी गति नहीं होती। इसलिये विषयानुरागको विषबेलिके समान त्यागकर सदा-सर्वदा परम श्रद्धाके साथ श्रीराधाकृष्णकी लीलाका श्रवण, कीर्तन करते-करते और श्रीकृष्णकी किसी प्रेममयी सखीको गुरु बनाकर उसके आज्ञानुसार श्रीकृष्णलीलाका ध्यान करते-करते तन-मनकी सुधि भुलाकर प्रेममें तन्मय हो जाना चाहिये।

गोपी-प्रेमका यह इधर-उधरसे संग्रह किया हुआ वर्णन सर्वथा

रसहीन हुआ है। गोपी-प्रेम दिव्यरसपूर्ण है। उस रसको साधारण मनुष्य कहाँसे प्राप्त करे और वाणी या लेखनी कैसे उसका वर्णन करे? हमलोगोंको उचित है कि परम प्रेममयी गोपिकाओंके चरण-वन्दन कर उनसे प्रेमकी भिक्षा माँगें और उनके प्यारे श्यामसुन्दरके नाम-गुणोंका गान कर जन्म-जीवनको सफल करें। श्रीललितकिशोरीजी कहती हैं—

रुचिकर साँवरे नाहिं अंग-अंग स्यामा-स्याम,
ऐरी धिक्कार और नाना कर्म कीबेपै।
पायनको धोइ निज करन ना पान कियो,
आली अंगार परैं सीतल जल पीबेपै॥
विचरे न बृंदावन कुंज-लतान तरे,
गाज गिरै अन्य फुलवारी-सुख लीबेपै।
'ललितकिसोरी' बीते बरस अनेक, दृग
देखे ना प्रानप्यारे, छार ऐसे जीबेपै॥

श्यामसुन्दर आज भी हैं, उनकी लीला भी नित्य है। परंतु हमें वे श्यामसुन्दर कैसे दीखें और हमें उनके चरण धोनेका सौभाग्य कैसे प्राप्त हो? नित्य-निरन्तर निष्काम प्रेमभावसे उनका नाम जपना, उनके गुणोंका कीर्तन करना, उनके प्रेमी भक्तोंका सङ्ग करना, उनके अनुकूल कार्य करना, उनके आज्ञानुसार चलना, उनके प्रत्येक विधानमें संतुष्ट रहना, जगत्का मोह छोड़कर उनकी रूपमाधुरीपर न्योछावर होनेकी साधना करना, उनकी लीलाओंका मनन करना और प्राण खोलकर हृदयके अन्तस्तलसे उनके पानेके लिये रोना—यही सब उपाय है। यदि चाहते हैं तो विषयासक्ति छोड़कर इन उपायोंका अवलम्बन कीजिये। करते-करते आप ही भावोंका विकास होगा और श्रीकृष्ण हमें सर्वस्वरूपमें मिल जायँगे। बोलो गोपी और गोपीनाथके पदपद्मपरागकी जय!

परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (भाईजी) के अनमोल सत्साहित्य

१-पदरत्नाकर-
२-श्रीराधा-माधव-चिन्तन-
३-अमृत-कण-
४-ईश्वरकी सत्ता और महत्ता-
५-सुख-शान्तिका मार्ग-
६-मधुर-
७-मानव-जीवनका लक्ष्य-
८-सुखी बननेके उपाय-
९-व्यवहार और परमार्थ-
१०-नारीशिक्षा-
११-दुःखमें भगवत्कृपा-
१२-सत्संग-सुधा-
१३-संतवाणी-ढाई हजार अनमोल बोल
१४-तुलसीदल-
१५-दाम्पत्य-जीवनका आदर्श-
१६-सत्संगके बिखरे मोती-
१७-श्रीरामचिन्तन-
१८-श्रीभगवन्नाम-चिन्तन-
१९-भवरोगकी रामबाण दवा-
२०-सुखी बनो-
२१-भगवत्प्राप्ति एवं हिन्दू-संस्कृति-
२२-साधकोंका सहारा-
२३-भगवच्चर्चा (भाग-५)
२४-पूर्ण समर्पण-
२५-प्रेमदर्शन-
२६-लोक-परलोकका सुधार-(कामके पत्र भाग-१)
२७-आनन्दका स्वरूप-
२८-महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर-
२९-शान्ति कैसे मिले ?-(लो०प० सुधार भाग-४)
३०-दुःख क्यों होते हैं ?-
३१-कल्याण-कुंज- (भाग-१)
३२-भगवान्‌की पूजाके पुष्प (कल्याण-कुञ्ज भाग-२)
३३-भगवान् सदा तुम्हारे साथ हैं (,, भाग-३)
३४-मानव-कल्याणके साधन-(कल्याण-कुञ्ज भाग-४)
३५-दिव्य सुखकी सरिता- (,, भाग-५)
३६-सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ-(,,भाग-६)
३७-परमार्थकी मन्दाकिनी- (,, भाग-७)
३८-प्रेम-सत्संग-सुधा-माला-
३९-गोसेवाके चमत्कार-(तमिल)
४०-मानव-धर्म-
४१-दैनिक कल्याण-सूत्र-
४२-प्रार्थना-इक्कीस प्रार्थनाओंका संग्रह
४३-गोपीप्रेम-
४४-श्रीभगवन्नाम-
४५-राधा-माधव-रस-सुधा-सटीक, व्रजभाषामें
४६-राधा-माधव-रस-सुधा- गुटका
४७-कल्याणकारी आचरण-
(जीवनमें पालन करने योग्य)
४८-साधन-पथ-सचित्र
४९-वर्तमान शिक्षा-
५०-स्त्री-धर्म-प्रश्नोत्तरी-
५१-मनको वश करनेके कुछ उपाय-
५२-आनन्दकी लहरें-
५३-गोवध भारतका कलंक एवं गायका माहात्म्य-
५४-ब्रह्मचर्य-
५५-दीनदुखियोंके प्रति कर्तव्य-
५६-सिनेमा मनोरञ्जन या विनाशका साधन
५७-विवाहमें दहेज-
५८-नैवेद्य-
५९-उपनिषदोंके चौदह रत्न-
६०-भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा-
61-Look Beyond the Veil
62-How to Attain Eternal Happiness ?
63-Turn to God
64-The Divine Message
65-Path to Divinity

गीताप्रेसकी निजी दूकानें तथा स्टेशन-स्टाल

गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५, फोन (०५५१) ३३४७२१; फैक्स (०५५१) ३३६९९७

e-mail:gitapres@ndf.vsnl.net.in | visit us at-www.gitapress.org

१. कलकत्ता- गोबिन्दभवन-कार्यालय ©(०३३) २३८६८९४
पिन-७००००७ १५१, महात्मा गाँधी रोड फैक्स (०३३) २३८०२५१

२. दिल्ली- गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तक-दूकान; ©(०११) ३२६९६७८
पिन-११०००६ २६०९, नयी सड़क फैक्स (०११) ३२५९१४०

३. पटना- गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तक-दूकान; ©(०६१२) ६६२८७९
पिन-८००००४ अशोकराजपथ, बड़े अस्पतालके सदर फाटकके सामने

४. कानपुर- गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तक-दूकान; ©(०५१२) ३५२३५१
पिन-२०८००१ २४/५५, बिरहाना रोड फैक्स (०५१२) ३५२३५१

५. वाराणसी- गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तक-दूकान; ©(०५४२) ३५३५५१
पिन-२२१००१ ५९/९, नीचीबाग e-mail-geetapress@satyam.net.in

६. हरिद्वार- गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तक-दूकान; ©(०१३३) ४२२६५७
पिन-२४९४०१ सब्जीमण्डी, मोतीबाजार

७. सूरत- गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तक-दूकान; ©(०२६१) २३८०६५, २३७३६२
पिन-३९५००१ वैभव एपार्टमेन्ट, नूतन निवासके सामने; भटार रोड

८. चूरू- गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तक-दूकान; © (०१५६२) ५२६७४
पिन-३३१००१ ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, पुरानी सड़क फुटकर बिक्री-केन्द्र

९. ऋषिकेश- गीताभवन, गङ्गापार, पो० स्वर्गाश्रम; ©(०१३५) ४३०१२२
पिन-२४९३०४

१०. कटक- गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तक-दूकान;
पिन-७५३०१२ भरतिया टावर्स, बादाम बाड़ी

स्टेशन-स्टाल [प्लेटफार्म नं० (कोष्ठ) में]

दिल्ली जंक्शन (प्लेटफार्म नं० १२); नयी दिल्ली (नं० ८-९); हजरत निजामुद्दीन [दिल्ली] (नं० ४-५); कोटा [राजस्थान] (नं० १); बीकानेर (नं० १); गोरखपुर [उ० प्र०] (नं० १); कानपुर (नं० १); लखनऊ [एन० ई० रेलवे]; वाराणसी (नं० ४-५); मुगलसराय जं० (नं० ३-४); हरिद्वार (नं० १); पटना जंक्शन (मुख्य प्रवेशद्वार); धनबाद (नं० २-३); मुजफ्फरपुर (नं० १); हावड़ा स्टेशन (नं० ८ तथा १८ दोनोंपर); सियालदा मेन (नं० ८); आसनसोल (नं० ५); औरंगाबाद [महाराष्ट्र] (नं० १); सिकन्दराबाद [आं० प्र०] (नं० १); गुवाहाटी जं० (मुसाफिरखाना) एवं अन्तर्राज्यीय बस-अड्डा, दिल्ली।